नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक

# बिगुल

मासिक समाचारपत्र • पूर्णांक 140 • वर्ष 13 • अंक 2-3
( संयुक्तांक ) मार्च-अप्रैल 2010 • तीन रुपये • 12 पृष्ठ

**बजट 2010-11 : इजारेदार पूँजी के संकट और मुनाफ़े का बोझ आम ग़रीब मेहनतकश जनता के सिर पर**

## कारपोरेट घरानों, धनी किसानों, ख़ुशहाल मध्यवर्ग पर तोहफ़ों की बारिश!

## मज़दूरों, ग़रीब किसानों और निम्न मध्यवर्ग की जेब से आख़िरी चवन्नी भी चोरी!

**सम्पादक मण्डल**

हाल ही में मनमोहन सिंह की अगुवाई वाली संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन सरकार ने अपने दूसरे कार्यकाल का दूसरा बजट पेश किया। वित्त मन्त्री प्रणब मुखर्जी ने इस बजट को *आम आदमी* का बजट करार दिया। इस बार के आर्थिक सर्वेक्षण (2009-2010) में मनमोहन सरकार ने जिस प्रकार की शब्दावली का इस्तेमाल किया वह कई मायनों में नयी थी और इससे इस सरकार के आर्थिक दर्शन के बारे में काफ़ी कुछ पता चलता है। आर्थिक सर्वेक्षण में कहा गया है कि राज्य को लोगों को सक्षम बनाने वाला होना चाहिए जिससे कि वे अपनी ज़रूरतें ख़ुद पूरी कर सकें। उसका यह काम नहीं है कि वह ख़ुद ही जनता की ज़रूरतों को पूरा करे। यह लोगों के जीवन में हस्तक्षेप जैसा होगा। शब्दों के इस मायाजाल के पीछे जो असलियत छिपी है, उसे समझना आसान है। राज्य के "अहस्तक्षेपकारी" और "सक्षम बनाने वाली भूमिका" का अर्थ है कि सरकार भोजन, शिक्षा, चिकित्सा आदि जैसी अपनी ज़िम्मेदारियों से और अधिक पीछे हटे। जब सरकार "हस्तक्षेपकारी" होने की बात करती है तो उसका मतलब इन्हीं ज़िम्मेदारियों से होता है। खुली बाज़ार व्यवस्था में राज्य की ऐसी भूमिका का कोई स्थान नहीं है! खुली बाज़ार व्यवस्था का अर्थ है पूँजी की लूट के समक्ष खड़ी सभी बाधाओं को हटा देना और जनता को सभी प्रकार की बुनियादी सुविधाओं से वंचित करके उसे पूरी तरह बाज़ार की अन्धी शक्तियों के हवाले कर देना। एक ऐसी व्यवस्था में सरकार का काम जनता की बुनियादी ज़रूरतों को पूरा करना कैसे हो सकता है? यह बजट इसी बात को "हस्तक्षेपकारी राज्य", "सक्षम बनाने वाला राज्य", आदि जैसी लच्छेदार भाषा में कहता है। लेकिन कांग्रेस के नेतृत्व वाली यही सरकार इस बजट में बड़े इजारेदार पूँजीपति घरानों, कारपोरेट घरानों, उच्च मध्यवर्ग, धनी किसानों और नेता-नौकरशाहों की सेवा में तोहफ़ों की बारिश करती नज़र आ रही है।

आइये देखें कि इस बजट में इस देश के पूँजीपतियों, धनी किसानों और उच्च मध्यवर्ग के लिए क्या है और इस देश के मज़दूर वर्ग, ग़रीब किसानों और निम्न मध्यवर्ग के लिए क्या है। इस बार के बजट में जिस बात को लेकर संसद में बैठने वाले वामपन्थियों से लेकर भाजपा, सपा, राजद आदि सभी विपक्षी दलों में एकता हो गयी, वह थी पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतों में वृद्धि। ज़ाहिर है कि संसदीय विपक्ष के विरोध का जनता के लिए कोई अर्थ नहीं है। इस विरोध का केवल चुनावी महत्त्व हो सकता था, लेकिन कांग्रेस ने यह काम बड़ी कुशलता से किया है क्योंकि न ही लोकसभा चुनाव क़रीब हैं और न ही कोई महत्त्वपूर्ण राज्य चुनाव नज़दीक है। लिहाज़ा, प्रणब मुखर्जी के पास पूँजीपतियों की सेवा करने के लिए पूरा खुला हाथ था। कहने की ज़रूरत नहीं है किसी भी चुनाव के नज़दीक आते ही एक लोकलुभावन बजट बनाया जायेगा। लेकिन अभी इसकी कोई ज़रूरत नहीं थी। इसीलिए पेट्रोल और डीज़ल की क़ीमत बढ़ाने पर होने वाले विरोध के बावजूद मनमोहन सरकार ने स्पष्ट कर दिया कि इस क़ीमत बढ़ोत्तरी को वापस नहीं लिया जायेगा। पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतें बढ़ने का असर सभी ज़रूरत के सामानों पर पड़ेगा और ख़ास तौर पर इसका असर खाने-पीने की वस्तुओं की क़ीमतों पर पड़ेगा जो पहले से ही आसमान छू रही हैं। वैसे तो पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतें बढ़ने पर सभी वर्गों को तकलीफ़ होती लेकिन सरकार ने उच्च और उच्च मध्यवर्ग की इस तकलीफ़ को प्रत्यक्ष कर में कटौती करके ख़त्म कर दिया है। लेकिन जो कर देश की 98 प्रतिशत जनता पर भारी पड़ता है, उन्हें बढ़ा दिया गया है (यानी कि अप्रत्यक्ष कर)। इसलिए आम मेहनतकश जनता के लिए पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतों में हुई बढ़ोत्तरी का सबसे अधिक प्रतिकूल असर पड़ रहा है। सरकार ने गाँवों में अपने सामाजिक आधारों को मज़बूत करने के लिए कृषि ऋण के लिए बजट को पिछली बार के 3,25,000 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 3,75,000 करोड़ रुपये कर दिया है। इसका लाभ किसे मिलने वाला है, बताने की ज़रूरत नहीं है। इसके लिए बस पिछले कुछ वर्षों के ऋण-सम्बन्धी आँकड़ों पर नज़र डाल लेना पर्याप्त होगा। पिछले वर्ष कुल कृषि ऋण की राशि का लगभग 90 प्रतिशत से भी ज़्यादा हिस्सा जिस प्रकार के ऋणों पर ख़र्च हुआ, उनका आकार 10 से 15 करोड़ रुपयों के बीच था। ज़ाहिर है कि ये ऋण किसी छोटे या यहाँ तक कि मँझोले किसान ने नहीं लिये होंगे। ये ऋण लिये बड़ी-बड़ी कारपोरेट खेती कम्पनियों और अति-धनी किसानों ने। इस बार भी जो ऋण राशि में बढ़ोत्तरी की गयी है वह इन्हीं धनी किसानों और कृषि व सम्बन्धित क्षेत्र की कम्पनियों को ध्यान में रखकर की गयी है।

महँगाई को कम करने की नौटंकी करने के नाम पर सरकार ने दालों और अनाज के परिवहन पर लगने वाले अतिरिक्त उत्पादन शुल्क को हटा दिया है। लेकिन हम सभी जानते हैं कि आज दालों व अनाज की महँगाई का कारण लागत में बढ़ोत्तरी या कम उत्पादन नहीं है। अनाज व दालों की क़ीमतों को अपनी जगह पर रोके रखने के लिए फ़ूड कारपोरेशन ऑफ़ इण्डिया के पास लगभग 52

( पेज 8 पर जारी )

## कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

**( दूसरी किस्त )**

### ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

**( गतांक से जारी )**

भारतीय बुर्जुआ वर्ग की यह चारित्रिक विशेषता थी कि वह उपनिवेशवादी ब्रिटेन की मज़बूरियों और साम्राज्यवादी विश्व के अन्तरविरोधों का लाभ उठाकर अपनी आर्थिक शक्ति बढ़ाता रहा था और 'समझौता-दबाव-समझौता' की रणनीति अपनाकर क़दम-ब-क़दम राजनीतिक सत्ता पर क़ाबिज़ होने की दिशा में आगे बढ़ रहा था। व्यापक जनसमुदाय को साथ लेने के लिए भारतीय बुर्जुआ वर्ग की प्रतिनिधि कांग्रेस पार्टी प्राय: गाँधी के आध्यात्मिक चाशनी में पगे बुर्जुआ मानवतावादी यूटोपिया का सहारा लेती थी। किसानों के लिए उसके पास गाँधीवादी 'ग्राम-स्वराज' का नरोदवादी यूटोपिया था। जब-तब वह पूँजीवादी भूमि-सुधार की बातें भी करती थी, लेकिन सामन्तों-ज़मींदारों को पार्टी में जगह देकर उन्हें बार-बार आश्वस्त भी किया जाता था कि उनका बलात् सम्पत्तिहरण कदापि नहीं किया जायेगा। मध्यवर्ग को लुभाने के लिए कांग्रेस के पास नेहरू, सुभाष और कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के रैडिकल समाजवादी नारे थे, जिनका व्यवहारत: कोई मतलब नहीं था और इस बात को भारतीय पूँजीपति वर्ग भी समझता था। ब्रिटिश उपनिवेशवादी भी समझते थे कि नेहरू का "समाजवाद" ब्रिटिश लेबर पार्टी के "समाजवाद" से भी ज़्यादा थोथा, लफ़्फ़ाज़ी भरा और पाखण्डी है। भारतीय पूँजीपति वर्ग राजनीतिक स्वतन्त्रता के निकट पहुँचते जाने के साथ ही यह समझता जा रहा था कि आधुनिक औद्योगिक भारत का नेहरू का सपना बुर्जुआ आकांक्षाओं का ही मूर्त रूप था। 'समाजवादी नियोजित अर्थतन्त्र' जैसे जुमलों से पूँजीपति आशंकित नहीं, बल्कि ख़ुश थे। वे पहले से ही इस बात को भली-भाँति समझते थे कि उत्तर-औपनिवेशिक भारत में आधारभूत और अवरचनागत उद्योगों को राज्य के नियन्त्रण में रखना ही उनके हित में होगा, क्योंकि 'पब्लिक सेक्टर' के अन्तर्गत ही जनता को निचोड़कर यातायात-परिवहन, बाँध-पनबिजली परियोजनाओं, खनिज-खदानों, इस्पात कारख़ानों आदि का विराट ढाँचा खड़ा किया जा सकता है। पूँजीपतियों के स्वामित्व वाले उद्योगों के विकास के लिए उद्योगों का यह आधारभूत ढाँचा ज़रूरी था, पर उस समय भारतीय पूँजीपतियों के पास इतनी पूँजी नहीं थी और इसके लिए समाजवादी मुखौटा ज़रूरी होगा। पूँजीपति वर्ग जानता था कि 'पब्लिक सेक्टर' उसी का हितसाधन करेगा, उसके शीर्ष पर बैठी शक्तिशाली नौकरशाही अन्तत: उसी की वर्ग-सहयोगी होगी और सरकार के मार्फ़त (जो वस्तुत: पूँजीपतियों की ही 'मैनेजिंग कमेटी होती है) पब्लिक सेक्टर पर वास्तविक नियन्त्रण भी उसी का होगा। (आश्चर्य नहीं, कि जैसे ही भारतीय पूँजीपति वर्ग आर्थिक दृष्टि से ताक़तवर हो गया, वैसे ही निजीकरण की प्रक्रिया शुरू हो गयी)।

उल्लेखनीय है कि 1934 में ही विश्वेश्वरैया ने सरकार द्वारा योजनाएँ बनाने की बात कही थी। 1938 में नेहरू के अधीन जो राष्ट्रीय योजना समिति बनी थी, उसकी 29 सहायक समितियों में भारतीय उद्योगपतियों-व्यापारियों के प्रतिनिधि शामिल थे। उस समिति में भी नेहरू ने मिश्रित अर्थव्यवस्था की बात की थी और साथ ही यह भी स्वीकार किया था कि औपनिवेशिक औद्योगिक संरचना को एक

( पेज 5 पर जारी )

**बजा बिगुल मेहनतकश जाग, चिंगारी से लगेगी आग!**

## आपस की बात

# जब मालिक ने मज़दूरों से हाथ जोड़कर माफ़ी माँगी

लुधियाना शहर मज़दूरों की बर्बर लूट का प्रतीक बन चुका है। 12 घण्टे के काम के बदले 2,500-3,500 तक का वेतन साधारण हेल्पर वर्करों को दिया जाता है। और किसी भी तरह की कोई सहूलियत मज़दूरों को नहीं दी जाती। यहाँ तक कि कारख़ाने में काम करने का कोई प्रमाणपत्र तक नहीं दिया जाता कि मज़दूर यह दावा कर सके कि वह किस कारख़ाने में काम करता है। वेतन समय से न देना, ज़बरदस्ती ओवरटाइम, काम का बोझ बढ़ाते जाना जैसी धक्केशाहियों के अलावा अकसर मज़दूरों को थप्पड़ मारकर, गालियाँ देकर बिना हिसाब किये मालिक कारख़ाने से बाहर निकाल देते हैं।

इसका सबूत लेबर कोर्ट में चल रहे हज़ारों केस हैं। सैकड़ों मज़दूर इंसाफ़ की उम्मीद में रोज़-रोज़ लेबर अधिकारियों के पास हाज़िरी लगाते हैं। बहुत से मज़दूर तो 10-10 वर्ष से इंसाफ़ की उम्मीद में भटक रहे हैं। ट्रेड यूनियन नेताओं की दलाली, मज़दूरों में एकता की कमी, और लेबर कोर्ट के मालिक पक्षधर रवैये के कारण मज़दूर, मालिकों की गुण्डागर्दी का शिकार हो रहे हैं।

ऐसी ही एक घटना हरगोबिन्द नगर में रहने वाले दो मज़दूरों – दीपक और राज गुप्ता के साथ घटी। ये दोनों जनवरी 2010 से मक्कड़ कालोनी (ग्यासपुरा) स्थित लोहा प्लाण्ट कम्बोज इण्डस्ट्रीज़ नामक एक छोटे-से कारख़ाने में काम करते थे। इस कारख़ाने में लगभग 15 मज़दूर काम करते थे। इसमें ट्रकों के एक्सल आदि बनते हैं। इस कारख़ाने में काम कर रहे मज़दूरों का कोई रिकार्ड नहीं था। काम पीस रेट पर करवाया जाता था। कोई भी सहूलियत नहीं दी जाती थी। बताया जाता है कि मालिक अक्सर मज़दूरों को गालियाँ देकर बिना पैसा दिये भगा देता था। मालिक सवरन सिंह और उसके बेटे ने दीपक और राज के साथ भी यही बर्ताव किया।

दीपक और राज दोनों 'कारख़ाना मज़दूर यूनियन', लुधियाना के सदस्य थे। यह मसला यूनियन के पास आया। यूनियन के प्रतिनिधि लखविन्दर ने मालिक सवरन सिंह से फ़ोन पर बात की और दोनों मज़दूरों का हिसाब अदा करने की बात कही। मालिक ने वायदा किया कि 10 मार्च को शाम 6 बजे वह हिसाब कर देगा।

तय किये गये समय पर यूनियन के संयोजक राजविन्दर और दोनों मज़दूर साथी कारख़ाना गेट पर पहुँचे। लेकिन मालिक ने न सिर्फ़ मिलने से इनकार कर दिया, बल्कि गालियाँ देते हुए कहा कि वह एक भी पैसा नहीं देगा।

साथी राजविन्दर मज़दूर साथियों से बाद में मिलने का समय तय करके वहाँ से आ गये। दीपक और राज वहीं आसपास कुछ बातचीत करने लगे तो मालिक और उसके बेटे ने उन पर हमला कर दिया। राज तो किसी तरह वहाँ से बच निकला। दीपक पैर की बीमारी के कारण ख़ुद को छुड़वा नहीं सका। मालिकों ने उसे बुरी तरह पीटा। उसका मोबाइल तोड़ दिया गया। उसे चोरी के इलजाम में फँसाने की धमकियाँ दी गयीं। किसी तरह दीपक वहाँ से जान बचाकर भागने में कामयाब हुआ। वह बहुत डरा हुआ और जख्मी था। यूनियन ने दोनों का मेडीकल करवाकर शेरपुर चौकी में शिकायत दर्ज करवायी। मालिक ने भी पुलिस में झूठी शिकायत पहले ही दर्ज करवा दी थी।

पुलिस ने पहले तो यूनियन को ही दोषी ठहराने की कोशिश की और मालिक को चौकी बुलाने की बात पर टालमटोल की। लेकिन यूनियन का सख़्त रवैया देखकर 12 मार्च को 3 बजे मालिक को चौकी बुलाया। लगभग 50 स्त्री-पुरुष मज़दूर इकट्ठा होकर चौकी पहुँचे।

मज़दूरों के सख़्त तेवर देखकर पुलिस और मालिक के होश उड़ गये। मालिक अपनी सफ़ाई में कोई भी ठोस सबूत देकर खुद को सही साबित न कर सका। आख़िर उसे अपनी ग़लती माननी पड़ी। उसने दोनों हाथ जोड़कर सभी मज़दूरों के सामने दीपक और राज से माफ़ी माँगी और उन्हें बकाया के अलावा तोड़े गये मोबाइल के पैसे, मेडीकल का ख़र्च देकर लिखित रूप में विश्वास दिलाया कि वह आगे से मज़दूरों के साथ ऐसा नहीं करेगा।

यह छोटी सी घटना साबित करती है कि मज़दूर एकजुट होकर लड़ें तो अपने अधिकार हासिल कर सकते हैं। यह भी मज़दूरों द्वारा संगठित कोशिशों की एक छोटी-सी जीत थी। इस जीत ने मज़दूरों में संगठन के प्रति विश्वास बढ़ाया और अन्य मज़दूरों को कारख़ाना यूनियन से जुड़ने के लिए प्रेरित किया।

**– लखविन्दर**

## जय श्री राम! जय श्री राम!

आलू-प्याज़ के इतने दाम?
जय श्री राम! जय श्री राम!

बच्चा-बच्चा राम का होवे
अपना आपा कभी न खोवे
आसमान छूती महँगाई!
चाहे कर दे काम तमाम!
जय श्री राम! जय श्री राम!

बिना नमक के खाओ भात
प्याज तामसी है साक्षात्
कूव्वत होय मलीदा चापो
हारे को केवल हरिराम!
जय श्री राम! जय श्री राम!

जपो स्वदेशी! जपो स्वदेशी!
पूँजी लाओ रोज विदेशी!
देशी और विदेशी जोंकें
चूसें जनता को ज्यों आम!
जय श्री राम! जय श्री राम!

**– मनबहकी लाल**

## मुनाफ़ाखोर व्यापारी की प्रार्थना

भाइयो इस महँगाई के दौर में एक तरफ जब लोग कुपोषण से बीमार पड़ रहे हैं, भूख से मर रहे हैं, लोगों का जीना दुश्वार हो गया है वहीं दूसरी तरफ सरकारी गोदामों में सैकड़ों टन अनाज सड़ाया जा रहा है। एक तो सरकार हम गरीबों के दिये टैक्स के पैसों से अमीर किसानों से महँगा अनाज खरीदती है, दूसरी ओर उस अनाज को गोदामों में सड़ा कर जमाखोरों को फायदा पहुँचाती है। ऐसे में एक जमाखोर क्या सोच रखता है, मुनाफा कमाने का क्या-क्या तरीका सोचता है, मैं अपनी कविता के जरिए बिगुल के पाठकों को बताना चाहता हूँ मुनाफाखोर व्यापारी की पूजा-अर्चना कविता के रूप में।

रहेंगे जितना सब बदहाल
बनेंगे उतना हम खुशहाल,
गरीबी सदा रहे आबाद।
गरीबी सदा रहे आबाद।
खरीदेंगे जब महँगी दाल
बढ़ेगा तेजी से अपना माल,
भरेंगे चीजों से गोदाम
तभी तो बढ़ेंगे उनके दाम,
गरीबी सदा...
महँगाई बढ़ो तुम सुबहो-शाम
नमक को होवे तिगुना दाम,
सड़े गोदामों में जनता का माल
बिके बाजार में अपनी दाल,
गरीबी सदा...
हो जाए देश चाहे कंगाल
रहेंगे हम तो मालामाल,
पड़ेंगे भूखे जब बीमार
करेंगे दवा का कारोबार,
गरीबी सदा...
मरेंगे भूख से बच्चे हज़ार
करेंगे कफन का कारोबार,
महँगाई की बढ़ती रहे रफ्तार
हमारी लिए सस्ती नैनो कार,
गरीबी सदा...
बनी है पूंजी की सरकार
मुनाफा जमकर काटो यार,
जनता करे चीख पुकार
हमारी रक्षक है सरकार,
गरीबी सदा...
हम हैं स्विस बैंक के खातेदार
है दौलत सात समन्दर पार,
गरीबी सदा...

**– ताज मुहम्मद अंसारी, लुधियाना।**

**बिगुल को सहयोग राशि भेजने वाले साथी ध्यान रखें**

**● मनीआर्डर भेज रहे हैं तो उसके साथ अपना नाम, पता उस हिस्से में भी लिखें जो संदेश के लिये निर्धारित होता है। एक पोस्टकार्ड पर भी अपना पता लिख कर भेज दें। कई बार सैटेलाइट मनीआर्डर में संदेश वाला हिस्सा ख़ाली होता है।**

**● कृपया सहयोग राशि भेजकर अपनी सदस्यता का नवीकरण करा लें और बिगुल को जारी रखने में मदद करें।**

**– सम्पादक**

## बिगुल का स्वरूप, उद्देश्य और ज़िम्मेदारियाँ

**1. 'बिगुल' व्यापक मेहनतकश आबादी के बीच क्रान्तिकारी राजनीतिक शिक्षक और प्रचारक का काम करेगा। यह मज़दूरों के बीच क्रान्तिकारी वैज्ञानिक विचारधारा का प्रचार करेगा और सच्ची सर्वहारा संस्कृति का प्रचार करेगा। यह दुनिया की क्रान्तियों के इतिहास और शिक्षाओं से, अपने देश के वर्ग संघर्षों और मज़दूर आन्दोलन के इतिहास और सबक़ से मज़दूर वर्ग को परिचित करायेगा तथा तमाम पूँजीवादी अफ़वाहों-कुप्रचारों का भण्डाफोड़ करेगा।**

**2. 'बिगुल' देश और दुनिया की राजनीतिक घटनाओं और आर्थिक स्थितियों के सही विश्लेषण से मज़दूर वर्ग को शिक्षित करने का काम करेगा।**

**3. 'बिगुल' भारतीय क्रान्ति के स्वरूप, रास्ते और समस्याओं के बारे में क्रान्तिकारी कम्युनिस्टों के बीच जारी बहसों को नियमित रूप से छापेगा और स्वयं ऐसी बहसें लगातार चलायेगा ताकि मज़दूरों की राजनीतिक शिक्षा हो तथा वे सही लाइन की सोच-समझ से लैस होकर क्रान्तिकारी पार्टी के बनने की प्रक्रिया में शामिल हो सकें और व्यवहार में सही लाइन के सत्यापन का आधार तैयार हो।**

**4. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के बीच लगातार राजनीतिक प्रचार और शिक्षा की कार्रवाई चलाते हुए सर्वहारा क्रान्ति के ऐतिहासिक मिशन से उसे परिचित करायेगा, उसे आर्थिक संघर्षों के साथ ही राजनीतिक अधिकारों के लिए भी लड़ना सिखायेगा, दुअन्नी-चवन्नीवादी भूजाछोर "कम्युनिस्टों" और पूँजीवादी पार्टियों के दुमछल्ले या व्यक्तिवादी-अराजकतावादी ट्रेडयूनियनबाज़ों से आगाह करते हुए उसे हर तरह के अर्थवाद और सुधारवाद से लड़ना सिखायेगा तथा उसे सच्ची क्रान्तिकारी चेतना से लैस करेगा। यह सर्वहारा की क़तारों से क्रान्तिकारी भरती के काम में सहयोगी बनेगा।**

**5. 'बिगुल' मज़दूर वर्ग के क्रान्तिकारी शिक्षक, प्रचारक और आह्वानकर्ता के अतिरिक्त क्रान्तिकारी संगठनकर्ता और आन्दोलनकर्ता की भी भूमिका निभायेगा।**

## नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

**अब इण्टरनेट पर भी उपलब्ध है। इस वेबसाइट पर दिसम्बर 2007 से अब तक बिगुल के सभी अंक और राहुल फ़ाउण्डेशन से प्रकाशित सभी बिगुल पुस्तिकायें उपलब्ध हैं। हम बिगुल के प्रवेशांक से लेकर अब तक के सभी अंक वेबसाइट पर उपलब्ध कराने के लिए काम कर रहे हैं। वेबसाइट का पता :**
**http://sites.google.com/site/bigulakhbar**

**'बिगुल' के ब्लॉग पर भी आप इसकी सामग्री पा सकते हैं और अपने विचार एवं सुझाव भेज सकते हैं। ब्लॉग का पता :**
**http://bigulakhbar.blogspot.com**


## नई समाजवादी क्रान्ति का उद्घोषक बिगुल

सम्पादकीय कार्यालय : 69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ-226006
फ़ोन : 0522-2335237
सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ
दिल्ली सम्पर्क : बी-100, मुकुन्द विहार, करावलनगर दिल्ली-94
ईमेल : bigul@rediffmail.com

मूल्य : एक प्रति–रु. 3/- वार्षिक–रु. 40.00 ( डाक ख़र्च सहित )


***"बुर्जुआ अख़बार पूँजी की विशाल राशियों के दम पर चलते हैं। मज़दूरों के अख़बार ख़ुद मज़दूरों द्वारा इकट्ठा किये गये पैसे से चलते हैं।" – लेनिन***

**'बिगुल' मज़दूरों का अपना अखबार है। यह आपकी नियमित आर्थिक मदद के बिना नहीं चल सकता। बिगुल के लिए सहयोग भेजिए/ जुटाइए।**
**सहयोग कूपन मँगाने के लिए बिगुल कार्यालय को लिखिये।**

**बिगुल 'जनचेतना' की सभी शाखाओं पर उपलब्ध है :**
● डी-68, निरालानगर, लखनऊ–226020 ● जनचेतना स्टाल, काफ़ी हाउस बिल्डिंग, हज़रतगंज, लखनऊ (शाम 5 से 8 बजे) ● जाफ़रा बाज़ार, गोरखपुर–273001 ● जनचेतना, दिल्ली - फोन : 09213639072 ● जनचेतना, लुधियाना – फोन : 09815587807

# भूख से दम तोड़ते सपने और गोदामों में सड़ता अनाज

हमारे इस "शाइनिंग इण्डिया" की एक वीभत्स तस्वीर यह भी है कि जिनकी आँखों में कल का सपना होना चाहिए, वे केवल भोजन की आस में ही दम तोड़ रहे हैं। इस देश के एक हिस्से में भूख के कारण वयस्क ही नहीं बच्चों की भी जानें जा रही हैं, तो दूसरे हिस्से में गोदामों में रखा अनाज सड़ रहा है और सरकारों के लिए समस्या यह है कि गेहूँ की नयी आमद का भण्डार कहाँ करे! उन्हें भूख से होती मौतों की इतनी चिन्ता नहीं है, जितना वे मालिकों के मुनाफ़े पर चोट पहुँचने से परेशान हैं।

पिछले दिनों उड़ीसा के बलाँगीर ज़िले में भयंकर पैमाने पर फैली भुखमरी के बारे में एक रिपोर्ट के अनुसार अकेले इस एक ज़िले में रोज़ छह वर्ष की उम्र तक के 4 बच्चों की मौत हो रही है। 2006 में इस आयु-वर्ग के बच्चों की मृत्यु दर 1,000 पर 48 थी, जोकि 2009 में बढ़कर 51 हो गयी। साफ़ देखा जा सकता है कि सरकार द्वारा ग़रीबी उन्मूलन और भुखमरी ख़त्म करने के लिए चलाये जा रहे तथाकथित अभियानों से ग़रीबों को क्या फ़ायदा मिल रहा है! यह आलम तब है जब उड़ीसा सरकार द्वारा ग़रीबी रेखा के नीचे की आबादी के लिए 2 रुपये प्रति किलोग्राम के हिसाब से प्रति व्यक्ति प्रति महीना 25 किलोग्राम चावल देने की घोषणा की गयी थी।

इस ज़िले के लोग भयंकर रूप से कुपोषण का शिकार हैं। वे भोजन की कमी के कारण टी.बी., शुगर, दस्त, अल्सर आदि पेट से सम्बन्धित बीमारियों का शिकार हो रहे हैं। इलाज के लिए पैसे जुटाने के लिए उन्हें रियायती दरों पर मिलने वाले अनाज को बेचना भी पड़ता है। इससे यह भी स्पष्ट हो जाता है कि ग़रीबी से मुक्ति के बिना लोगों लिए रियायती दरों पर अनाज की स्कीमों का वास्तव में कोई अर्थ नहीं रह जाता है।

वैसे, यह ग़रीबी रेखा और ग़रीबों का मज़ाक़ उड़ाना ही है कि एक तरफ़ सरकार के हिसाब से तय की गयी ग़रीबी रेखा के नीचे रहनेवाली बड़ी आबादी इस रियायती अनाज से वंचित है, तो दूसरी तरफ़ यह रियायती अनाज अघोषित "ग़रीबी रेखा के ऊपर" कार्यक्रम के तहत मन्त्रियों, अफ़सरों, अधिकारियों आदि को बाँटा जा रहा है।

उपरोक्त रिपोर्ट जब अख़बारों में प्रकाशित हुई थी, उसी समय पंजाब के अख़बारों में एक अन्य समस्या पर ख़बरें आ रही थीं। पंजाब में इस वर्ष के गेहूँ की सरकारी ख़रीद शुरू होने वाली है। और पंजाब सरकार के लिए यह चिन्ता का विषय है कि जब पहले से ही पिछले वर्षों का अनाज गोदामों में पड़ा सड़ रहा है, बर्बाद हो रहा है तो इस नये गेहूँ को कहाँ सँभाला जायेगा।

पंजाब में पिछले तीन वर्षों में खुले में पड़ा 16,500 टन अनाज सड़ गया। जहाँ देश में एक तरफ़ लोगों को अनाज नहीं मिल रहा है, वहीं देश के एक प्रान्त की सरकार को इस वर्ष पिछले वर्ष से भी अधिक गेहूँ पैदा होने का डर सता रहा है। लोग अब पंजाब सरकार को अनाज भण्डारण के लिए और गोदाम बनाने की सलाह दे रहे हैं।

इसमें कोई शक नहीं कि अनाज को सँभालने के लिए सही इन्तज़ाम होने चाहिए। लेकिन मूल प्रश्न तो यह है कि देश में एक तरफ़ अनाज की बहुलता की समस्या है, तो दूसरी तरफ़ लोग भूख से क्यों मर रहे हैं। इस सवाल का जवाब अधिकतर लोग यही देंगे कि सरकारों की नालायक़ी, लापरवाही के चलते ही ऐसा हो रहा है। वे कहेंगे कि अगर सरकारें सही ढंग से काम करें तो यह स्थिति पैदा नहीं होगी। लेकिन समस्या के मूल में सरकारों की नालायक़ी, लापरवाही या सही ढंग से काम न करना नहीं है; इसके मूल में है यह पूँजीवादी व्यवस्था, जो मुनाफ़े पर टिकी है।

हमारे देश में हर चीज़ की पैदावार की तरह अनाज की पैदावार भी मुनाफ़े के लिए होती है। सरकारें इस मुनाफ़ाखोर व्यवस्था को हर हाल में बचाने और मज़बूत बनाने के सिवा और कुछ नहीं करतीं।

ऐसे में सरकार ग़रीबों को रियायती दरों पर अनाज बाँटने का कुछ ढोंग तो कर सकती हैं, लेकिन अगर सारा अनाज ही ग़रीबों में इस तरह बाँट दिया गया तो उनकी पूँजीवादी व्यवस्था कैसे चलेगी?

**– बिगुल संवाददाता**

# लोकतन्त्र की लूट में जनता के पैसे से अफ़सरों की ऐयाशी

जनता को बुनियादी सुविधाएँ मुहैया कराने का सवाल उठता है तो केन्द्र सरकार से लेकर राज्य सरकारें तक धन की कमी का विधवा विलाप शुरू कर देती हैं, लेकिन जनता से उगाहे गये टैक्स के दम पर पलने वाले नेता और नौकरशाही अपनी हरामखोरी और ऐयाशी में कोई कमी नहीं आने देते। इसी का एक ताज़ातरीन नमूना है पंजाब सरकार द्वारा 2006 में कृषि विविधता के लिए शुरू की गयी परियोजना।

पंजाब सरकार द्वारा कृषि में विभिन्नता लाने के लिए 2006 में एक प्रोजेक्ट की शुरुआत की गयी थी। इस प्रोजेक्ट को शुरू करते समय बड़े-बड़े दावे किये गये; जैसे, कि एक वर्ष के अन्दर यानी 2007 तक 20,000 एकड़ भूमि को बागवानी, और जैविक कृषि के तहत ला दिया जायेगा।

आइये देखें, चार वर्ष गुज़र जाने के बाद क्या हासिल हुआ है। लेकिन यह प्रोजेक्ट करोड़ों रुपये के घोटाले की शक्ल ले चुका है। अब तक इस प्रोजेक्ट पर 81 करोड़ रुपये ख़र्च किये जा चुके हैं, लेकिन सिर्फ़ 3,800 एकड़ ज़मीन ही बागवानी और जैविक कृषि के तहत लायी जा सकी है।

अब हुआ यह है कि सरकार के पास इस प्रोजेक्ट के लिए पैसा ख़त्म हो चुका है और यह प्रोजेक्ट अपनी आख़िरी साँसें गिन रहा है। लेकिन इस प्रोजेक्ट ने कुछ लोगों को ख़ूब ऐश करवायी है। कृषि के नाम पर करोड़ों रुपया इस प्रोजेक्ट के अधिकारियों और स्टाफ़ द्वारा पाँच सितारा होटलों के बिलों, यात्राओं, विदेशी शराब पर उड़ा दिया गया है।

कृषि में विविधता लाने के इस प्रोजेक्ट के तहत चार काउंसिलें बनायी गयी थीं। ये काउंसिले थीं : 1. काउंसिल फ़ॉर सिटरस एण्ड एग्री जूसिंग इन पंजाब (नीबू प्रजाति के फलों और कृषि उत्पादों के जूसों से सम्बन्धित काउंसिल) 2. काउंसिल फ़ॉर वैल्यू एडिड होर्टीकल्चर इन पंजाब (मूल्य युक्त बागबानी से सम्बन्धित काउंसिल) 3. ऑरगैनिक फ़ार्मिंग काउंसिल ऑफ़ पंजाब (जैविक कृषि से सम्बन्धित काउंसिल) 4. विटीकल्चर काउंसिल ऑफ़ पंजाब (अंगूरों की खेती से सम्बन्धित काउंसिल)।

इन काउंसिलों का उप-प्रधान आई.ए.एस. अफ़सर हिम्मत सिंह को बनाया गया था। कृषि विविधिता के लिए की

गयी यात्राओं के दौरान मुम्बई के ताज होटल का बिल 61,914 रुपये था, जे. डब्ल्यू. मारिओट में ठहरने पर उन्होंने 38,198 रुपये ख़र्च किये, द ओबराय होटल में ठहरने पर उन्होंने 33,974 रुपये, होटल ट्राइडेण्ट में ठहरने पर 29,355 और होटल द मराठा में ठहरने पर 27,135 रुपये उड़ा दिये।

चारों काउंसिलें उन्हें अब तक यात्राओं, मनोरंजन, आवाजाही और इण्टरनेट के लिए 5.4 लाख रुपये दे चुकी हैं। काउंसिलों से उप-प्रधान हिम्मत सिंह द्वारा की गयी फ़िज़ूलख़र्ची की सूचना अधिकार क़ानून के तहत बाहर आयी, लेकिन यह भी अधूरी जानकारी है।

काउंसिलों के सी.ई.ओ. वी.एस. चिमनी अन्य पाँच के साथ पंजाब में कृषि विविधता के लिए जब अमेरिका के दौरे पर गये तो लगभग चालीस लाख रुपये उड़ा कर आये। उन्होंने तो हिम्मत सिंह को भी पीछे छोड़ते हुए एक पाँच सितारा होटल के कमरे का एक दिन का किराया 33,000 रुपये दर्ज करवाया है। काउंसिलों ने पिछले चार वर्षों में महज़ स्थानीय आवाजाही पर 3 करोड़ रुपये उड़ा दिये। अधिकारियों के पारिवारिक सदस्यों की आवाजाही तक का ख़र्च काउंसिलें अदा करती रही हैं। सी.ई.ओ. चिमनी साहब हर महीने औसतन 4,000 किलोमीटर का सफ़र दर्ज करवा चुके हैं। इसके अलावा वे निजी वाहन द्वारा यात्रा के लिए हर महीने 53,000 रुपये ख़ज़ाने से निकालते रहे हैं।

नींबू प्रजाति से सम्बन्धित फलों के लिए बनी काउंसिल बाग लगाने के लिए किराये पर ज़मीन लेने के लिए 49 करोड़ रुपये ख़र्च कर चुकी है। लेकिन 14.5 करोड़ रुपये के फल समय पर न तोड़े जाने के कारण बर्बाद हो गये। इस काउंसिल ने बिना टेण्डर निकाले 42.65 लाख रुपये के पौधे सिर्फ़ एक ही व्यापारी से ख़रीद लिये। जैविक खेती की काउंसिल द्वारा 2007-08 में 31.46 लाख की चाय और चाय के बैग ख़रीदे गये, जिसमें से 20,048 की बिक्री 2008-09 में की गयी। 31 लाख रुपये से भी अधिक का बाक़ी माल कहाँ गया, यह अब भी एक राज बना हुआ है।

काउंसिलों के अफ़सरों, अधिकारियों और अन्य स्टाफ़ द्वारा जनता के धन की बर्बादी होती रही, जो अब करोड़ों के घोटाले का रूप ले चुका है और उन्हें पूछने वाला कोई नहीं था। पहले कांग्रेस की कैप्टन सरकार और उसके बाद अकाली दल और भाजपा की बादल सरकार के कान पर जूँ तक न रेंगी। सिर से पैर तक भ्रष्टाचार में डूबे मौजूदा राजनीतिक तन्त्र से और उम्मीद भी क्या की जा सकती है?

**– बिगुल संवाददाता**

# शीला जी? आपको पता है, न्यूनतम मज़दूरी कितने मज़दूरों को मिलती है?

दिल्ली सरकार ने पिछले दिनों बड़ी धूमधाम के साथ दिल्ली में न्यूनतम मज़दूरी की दर 33 प्रतिशत बढ़ाने का ऐलान कर दिया। अब कुशल मज़दूर को 248 रुपये प्रतिदिन, अर्द्धकुशल मज़दूर को 225 रुपये और अकुशल मज़दूर को 203 रुपये प्रतिदिन की न्यूनतम मज़दूरी मिलेगी! मुख्यमंत्री शीला दीक्षित ने तो यहाँ तक कह डाला कि महँगाई से अब लोगों को कोई ख़ास परेशानी नहीं होगी क्योंकि सरकार ने उनकी तनख्वाह भी बढ़ा दी है।

दिल्ली में काम करने वाला हर मज़दूर जानता है कि इससे बड़ा झूठ कुछ नहीं हो सकता। क्या दिल्ली सरकार नहीं जानती कि दिल्ली के 98 प्रतिशत मज़दूरों को न्यूनतम मज़दूरी भी नहीं मिलती है। राजधानी के दो दर्जन से अधिक औद्योगिक क्षेत्रों में लाखों स्त्री-पुरुष मज़दूर हर महीने 1500 से लेकर 3000 रुपये तक पर खटते हैं। उन्हें ईएसआई, जॉब कार्ड, साप्ताहिक छुट्टी जैसी बुनियादी सुविधाएँ भी नहीं मिलती हैं। "दिल्ली की शान" कहे जाने वाले मेट्रो तक में न्यूनतम मज़दूरी माँगने पर मज़दूरों से गुण्डागर्दी की जाती है।

ऐसे में ये सरकारी घोषणा दिल्ली के लाखों मज़दूरों के साथ एक फूहड़ मज़ाक नहीं तो और क्या है? अगर सरकार को मज़दूरों की वाकई चिन्ता है, तो सबसे पहले वह यहाँ के सारे कारखानों में न्यूनतम मज़दूरी लागू करके दिखाये?

देशी-विदेशी धनपतियों की सेवा में लगी हुई मुख्यमंत्री फ़्रांस की रानी की तरह बरताव कर रही हैं जिसने रोटी की माँग कर रहे लोगों पर हँसते हुए कहा था कि उन्हें रोटी नहीं मिलती तो वे केक क्यों नहीं खाते? अगर शीला जी ने इतिहास पढ़ा होगा तो उनको मालूम होगा कि उस आततायी रानी का क्या हश्र हुआ। फ़्रांसीसी क्रान्ति में मेहनतकशों की बग़ावत ने उसे उठाकर इतिहास के कूड़ेदान में दफ़न कर दिया!

**(नौजवान भारत सभा, बादली, दिल्ली की दीवाल पत्रिका 'चिंगारी' से)**

## हम राज करें, तुम राम भजो!

खाने की टेबुल पर जिनके
पकवानों की रेलमपेल
वे पाठ पढ़ाते हैं हमको
'सन्तोष करो, सन्तोष करो!'

मोटी-मोटी तोंदों को जो
ठूँस-ठूँसकर भरे हुए
हम भूखों को सीख सिखाते -
'सपने देखो, धीर धरो!'

उनके धन्धों की ख़ातिर
हम पेट काटकर टैक्स भरें
और नसीहत सुनते जायें -
'त्याग करो, भई त्याग करो!'

बेड़ा गर्क देश का करके
हमको शिक्षा देते हैं -
'तेरे बस की बात नहीं
हम राज करें, तुम राम भजो!'

**– मनबहकी लाल**

(बेटोल्ट ब्रेष्ट की कविता के आधार पर)

# पंजाब में क्रान्तिकारियों की याद में कार्यक्रम

नौजवान भारत सभा ने महान शहीदों – भगतसिंह, राजगुरु और सुखदेव के 79वें शहादत दिवस के अवसर पर पंजाब के विभिन्न क्षेत्रों – लुधियाना, मण्डी गोबिन्दगढ़, माछीवाड़ा, पख्खोवाल, रायकोट, जगराओं, नवाँ शहर, जोनेवाल, खन्ना, अलोड़ गाँव, जोनेवाल गाँव में ज़ोरदार प्रचार अभियान चलाकर हज़ारों लोगों तक शहीदों के विचार पहुँचाये। इस अवसर पर बड़े पैमाने पर पंजाबी और हिन्दी में पर्चा भी बाँटा गया। शहीद भगतसिंह की तस्वीर वाला एक आकर्षक पोस्टर पंजाब के अनेक शहरों और गाँवों में दीवारों पर चिपकाया गया। लुधियाना, मण्डी गोबिन्दगढ़ और माछीवाड़ा में क्रान्तिकारी नाटकों और गीतों के ज़रिये शहीदों को श्रद्धांजलि की गयी।

**लुधियाना :** नौभास के सहयोग से कारख़ाना मज़दूर यूनियन लुधियाना ने समराला चौक के पास स्थित ई. डब्ल्यू. एस. कालोनी में 21 मार्च को क्रान्तिकारी सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया। कार्यक्रम की तैयारी के लिए मज़दूर बस्तियों के बेड़ों और मण्डियों में पर्चे बाँटे गये। बेड़ों में मीटिंगें की गयीं। कमरे-कमरे जाकर मज़दूरों को कार्यक्रम में पहुँचने का सन्देश दिया गया। 21 मार्च की दोपहर को 2.30 बजे कार्यक्रम शुरू हुआ। लुधियाना के विभिन्न इलाक़ों से स्त्री-पुरुष मज़दूर बड़ी संख्या में कार्यक्रम में शामिल हुए।

कार्यक्रम की शुरुआत क्रान्तिकारी गीतों से हुई। गवीश, राजविन्दर और परमिन्दर ने "तस्वीर बदल दो दुनिया की", "आ गये यहाँ जवाँ क़दम", "ये किसका लहू है कौन मरा" आदि गीत पेश किये। इसके बाद शहीद भगतसिंह के अन्तिम जेल जीवन पर आधारित देविन्दर दमन का लिखा नाटक "शहादत से पहले" और पूँजीवादी संसदीय व्यवस्था के ढोंग के बारे में गुरशरन सिंह का लिखा नाटक "हवाई गोले" पेश किया गया। क्रान्तिकारी गीतों और नाटकों को लोगों ने ख़ूब पसन्द किया। हमारी एक छोटी साथी गार्गी ने "भगतसिंह इस बार न लेना काया भारतवासी की" गीत पेश किया। साथी ताज ने अपनी एक कविता पेश की। साथी विक्रम ने लोगों के सामने जादू दिखाकर बताया कि कैसे ढोंगी तान्त्रिक बाबा लोगों को मूर्ख बनाते हैं। उन्होंने बताया कि जादू किसी तन्त्र-मन्त्र से नहीं, बल्कि हाथ की सफ़ाई से होता है और हर कोई सीख सकता है। लोगों ने इसे ख़ूब पसन्द किया।

कारख़ाना मज़दूर यूनियन लुधियाना के संयोजक राजविन्दर ने सभा को सम्बोधित करते हुए कहा कि शहीदों का सपना पूरा करने के लिए ज़रूरी है कि हम जातियों, धर्मों और इलाक़ों के झगड़ों से ऊपर उठकर मज़दूरों की वर्गीय एकता क़ायम करें। एकजुट संघर्षों में शामिल होते हुए और अन्य मज़दूरों को शिक्षित करते हुए तथा अपने साथ जोड़ते हुए बड़ी और निर्णायक लड़ाई की तरफ़ बढ़ा जा सकता है। आज सभी सरकारों का मज़दूर विरोधी चेहरा नंगा हो चुका है। आज़ादी के 63 साल बाद भी मज़दूर अंग्रेज़ी ग़ुलामी से भी बदतर ज़िन्दगी जीने को मज़बूर हैं। मज़दूरों के वे सारे हक़-अधिकार वापस छीने जा रहे हैं, जो उन्होंने बेहिसाब क़ुर्बानियों के बाद हासिल किये थे। क्रान्तिकारी

**23 मार्च 1931 के शहीदों का 79वाँ शहादत दिवस**

शहीदों के विचारों को जनता तक पहुँचाते हुए जनता को लुटेरे हुक्मरानों के ख़िलाफ़ जागरूक और संगठित करना ही महान शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि होगी।

मंच संचालन ताज मुहम्मद ने किया। "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद", "अमर शहीदों का पैगाम, जारी रखना है संग्राम", "ख़त्म करो पूँजी का राज, लड़ो बनाओ लोक स्वराज", "मज़दूर एकता ज़िन्दाबाद", आदि गगनभेदी नारों के साथ कार्यक्रम का समापन किया गया।

**मण्डी गोबिन्दगढ़ :** नौभास की मण्डी गोबिन्दगढ़ इकाई ने संगतपुरा मुहल्ले में क्रान्तिकारी नाटकों व गीतों के सांस्कृतिक कार्यक्रम का आयोजन किया। 22 मार्च की शाम को आयोजित किये गये इस कार्यक्रम की शुरुआत में राजविन्दर ने पाश की लिखी ग़ज़ल "दहकदे अंग्याराँ ते" पेश की। राजविन्दर और परमिन्दर ने "माँ धरतीए", "मशालाँ बाल के चलणा" आदि क्रान्तिकारी गीत पेश किये। "शहादत से पहले" और "हवाई गोले" नाटक पेश किये गये। एक छोटी बच्ची दीया जौली ने क्रान्तिकारी गीत पेश किया। लोगों ने ज़ोरदार तालियों से उसका प्रोत्साहन बढ़ाया। साथी लखविन्दर ने अपने भाषण के ज़रिये कार्यक्रम में हाज़िर लोगों तक शहीद भगतसिंह का सन्देश पहुँचाया। मंच संचालन मास्टर गुलशन ने किया।

नौभास ने मण्डी गोबिन्दगढ़, खन्ना तथा इलाक़े के कुछ गाँवों में बड़े पैमाने पर पर्चे बाँटकर लोगों तक क्रान्तिकारी शहीदों के विचारों को पहुँचाया और शहीदों के सपने पूरा करने के लिए आगे आने के लिए उनका आह्वान किया।

**माछीवाड़ा :** माछीवाड़ा की इन्दिरा कालोनी में नौभास द्वारा आयोजित क्रान्तिकारी सांस्कृतिक कार्यक्रम में बड़ी संख्या में स्त्री-पुरुष शामिल हुए। कार्यक्रम की तैयारी के लिए सभा के सदस्यों ने घर-घर जाकर पर्चा बाँटा और कार्यक्रम में शामिल होने के लिए लोगों का आह्वान किया। माछीवाड़ा कस्बे के अलावा क्षेत्र के गाँवों में भी पर्चा बाँटा गया।

27 मार्च की शाम को कार्यक्रम शुरू होने से पहले नौजवानों द्वारा मशाल जुलूस निकाला गया। "इन्क़लाब ज़िन्दाबाद", "शहीद भगतसिंह, सुखदेव, राजगुरु अमर रहें", "अमर शहीदों का पैग़ाम, जारी रखना है संग्राम" आदि नारे बुलन्द करते हुए नौजवान स्त्री-पुरुषों का यह जुलूस माछीवाड़ी की सड़कों और गलियों से गुज़रा। लोगों ने घरों से निकलकर मशाल जुलूस का स्वागत किया। नौजवानों ने मशाल जुलूस के दौरान लोगों में शहीदों के विचारों का परिचय देता पर्चा भी बाँटा।

कार्यक्रम की शुरुआत गवीश, राजविन्दर और परमिन्दर द्वारा पेश किये गये क्रान्तिकारी गीतों से हुई। एक छोटे बच्चे धरमिन्दर ने "हिन्दवासियो रखना याद सानू" गीत पेश किया। रिक्शा मज़दूर धन्ना द्वारा पेश गीत सरदार भगतसिंह भी लोगों ने ख़ूब पसन्द किया। साथी राजविन्दर ने लोगों को सम्बोधित करते हुए कहा कि "शहीद भगतसिंह का नाम सारे शहीदों से आगे आता है। इसका कारण उनका वैचारिक पक्ष है। उनके पास आज़ाद भारत की राजनीतिक-आर्थिक-सामाजिक व्यवस्था का नक्शा था। भगतसिंह और उनके साथी साम्राज्यवादी लूट के साथ ही देशी पूँजीपतियों के हाथों जनता की लूट के भी ख़िलाफ़ थे। वे देश के कारख़ानों, खदानों और भूमि की मलकियत के हक़दार वहाँ काम करने वाले मज़दूरों, किसानों को ही मानते थे। लूट-शोषण के ख़िलाफ़ एकता बनाकर लड़ना ही शहीदों को सच्ची श्रद्धांजलि है।" मंच संचालन साथी लखविन्दर ने किया।

**– बिगुल संवाददाता**

# पंजाब राज्य बिजली बोर्ड तोड़ने की तैयारी

आख़िर पंजाब सरकार ने पंजाब राज्य बिजली बोर्ड का निगमीकरण करने को हरी झण्डी दे दी है। इससे बिजली की पैदावार, सप्लाई और वितरण के काम के निजीकरण का रास्ता साफ़ हो गया है। वैसे बहुत लम्बे समय से पंजाब सरकार ऐसा करने की कोशिशें कर रही है, लेकिन बिजली बोर्ड के कर्मचारियों तथा किसान संगठनों के ज़बरदस्त विरोध के कारण वह ऐसा करने से हाथ पीछे खींचती रही। अब तक एक दर्जन से भी अधिक बार पंजाब सरकार बिजली बोर्ड को भंग करने की तारीख़ें आगे खिसका चुकी है, लेकिन लगता है कि इस बार उसने हर तरह के विरोध को बर्बरतापूर्वक कुचलकर इस काम को अंजाम देने की ठान ली है।

वैसे पंजाब सरकार इस निगमीकरण से पहले ही बिजली बोर्ड में निजीकरण को व्यवहार में लागू करती आ रही है। उदाहरण के तौर पर सरकारी पक्की भर्ती पहले ही लगभग पूरी तरह बन्द कर दी गयी थी। 12-13 वर्षों में लगभग 30,000 कर्मचारी रिटायर हो चुके हैं, लेकिन उनकी जगह पर सरकारी भर्ती नहीं की गयी। सारे काम ठेके पर करवाने की नीति अपनायी जा रही है। पंजाब सरकार बिजली की पैदावार बढ़ाने के लिए ज़रूरत के मुताबिक़ बिजली प्लाण्ट लगाने को तैयार नहीं, क्योंकि यह काम वह निजी कम्पनियों से करवाना चाहती है।

इस नीति के चलते स्थिति यह है कि पंजाब लम्बे समय से भयंकर बिजली संकट से गुज़र रहा है। पंजाब सरकार के पास पंजाब को बिजली संकट से निकालने के लिए हवाई दावों के सिवा कुछ नहीं है। बिजली बोर्ड के निगमीकरण और उसके बाद इसके सम्पूर्ण निजीकरण के बाद बिजली बार्ड के कर्मचारियों का भविष्य तो अन्धकार में डूब ही जायेगा, पंजाब की समूची जनता को बिजली के और व्यापक संकट का भी सामना करना पड़ेगा।

पंजाब राज्य बिजली बोर्ड के निगमीकरण के तहत इसे दो कम्पनियों में बाँट दिया जायेगा। एक कम्पनी बिजली पैदावार और वितरण का काम करेगी और दूसरी सप्लाई का काम करेगी। असल में देश के हुक्मरान लम्बे समय से विभिन्न प्रान्तों के बिजली बोर्डों को भंग करके बिजली की पैदावार, सप्लाई और वितरण के काम को देशी-विदेशी निजी कम्पनियों को सौंपने की कोशिशों में जुटे हैं।

बिजली बोर्डों के निजीकरण के रास्ते से क़ानूनी अड़चनें हटाने के लिए वाजपेयी सरकार ने बिजली एक्ट 2003 बनाया। इस क़ानून के तहत अलग-अलग राज्यों के बिजली बोर्डों को भंग करके पहले इनकी सारी सम्पत्ति, बुनियादी ढाँचा और कर्मचारी – सब राज्य सरकारों के अधीन आ जायेंगे। फिर राज्य सरकार एक समझौते के तहत इसे "कम्पनी या कम्पनियों" को सौंप देगी। राज्य सरकार एक वर्ष के लिए इसे "स्टेट ट्रांसमिशन यूटिलिटी सर्विसेज़" के नाम पर किसी सरकारी कम्पनी के तहत चला सकती है और इस अर्से को केन्द्रीय सरकार की सहमति से बढ़ा भी सकती है। लेकिन यह अस्थायी ही होगा। आख़िार इन कम्पनियों को कम्पनी एक्ट 1950 के अधीन आना ही है जिससे इन कम्पनियों में निजी हिस्सेदारी का रास्ता खुल जायेगा और इस तरह इन कम्पनियों के निजी कम्पनियों में तब्दील होने का रास्ता साफ़ हो जायेगा।

अब तक बिजली बोर्ड "अर्ध-व्यापारिक" उद्यमों के तौर पर चल रहे थे। लेकिन यह क़ानून लागू होने के बाद ये विशुद्ध व्यापारिक उद्यमों/कम्पनियों में बदल जायेंगे। सरकारें बिजली की पैदावार, सप्लाई, और वितरण की ज़िम्मेदारी से मुक्त हो जायेंगी और जन-कल्याण का लबादा उतारकर पूँजीपतियों की मैनेजिंग कमेटी के अपने असली रूप में सामने आ जायेंगी।

जनता की ख़ून-पसीने की कमाई से निचोड़े गये टैक्सों, लाखों बिजली मज़दूरों की मेहनत, काम करते हुए जानें गँवा देने वाले मज़दूरों के दम पर खड़े हुए बिजली बोर्डों की क़ीमतें अब राज्य सरकारों द्वारा तय की जायेंगी। कौड़ियों के मोल बोर्डों की सारी सम्पत्ति निजी कम्पनियों को बेच दी जायेगी। बिजली क़ानून 2003 के तहत बिजली बोर्डों की सारी सम्पत्ति तो निजी कम्पनियों के हवाले कर दी जायेगी, लेकिन मज़दूरों और अफ़सरों को लेना कम्पनियों की मजबूरी नहीं होगा। बिजली बोर्डों का निजीकरण हो जाने के बाद बिजली कर्मचारियों के वेतन-भत्तों, तथा अन्य सहूलियतों में कटौतियाँ होंगी। नौकरी की सुरक्षा की कोई गारण्टी नहीं रहेगी। इस प्रकार पंजाब के बिजली बोर्ड के निजीकरण से लगभग 60 हज़ार कर्मचारी प्रभावित होंगे।

बिजली बोर्ड के निजीकरण के हिमायतियों का कहना है कि कम्पनियों के परस्पर मुक़ाबले में बिजली की क़ीमतें कम होती जायेंगी। लेकिन यह एक बहुत बड़ा भ्रम है। निजीकरण से लोगों को बिजली की ऊँची क़ीमतें चुकानी होंगी। इजारेदार कम्पनियाँ सुपर मुनाफ़े कमाने के लिए हर हथकण्डा इस्तेमाल करेंगी। यह भी तय है कि निजी कम्पनियाँ शहरों के मुक़ाबले गाँवों पर कम ध्यान देंगी। ग्रामीण इलाक़ों की अनदेखी हालाँकि पहले भी गम्भीर थी लेकिन अब यह अभूतपूर्व रूप से बढ़ जायेगी।उड़ीसा, हरियाणा, कर्नाटक, आन्ध्र प्रदेश, उत्तर प्रदेश, उत्तराखण्ड, राजस्थान, दिल्ली, मध्य प्रदेश, छत्तीसगढ़, गुजरात और महाराष्ट्र के बिजली बोर्डों को बिजली एक्ट 2003 के तहत पहले ही भंग कर दिया गया है और इस तरह वहाँ बिजली क्षेत्र के निजीकरण की प्रक्रिया आगे बढ़ चुकी है। जहाँ-जहाँ निजी कम्पनियों को यह काम सौंपा गया है, इसके भयंकर नतीजे सामने आये हैं। सप्लाई बुरी तरह प्रभावित हुई और क़ीमतें अभूतपूर्व ढंग से बढ़ गयीं।

ख़ास बात यह कि सरकारें बिजली क्षेत्र की ज़िम्मेदारी निजी कम्पनियों को सौंपते समय उनके कम से कम मुनाफ़े की रक़म तय करती हैं। तय क़ीमत से कम मुनाफ़ा होने पर सरकारें जनता से निचोड़े गये सरकारी ख़ज़ाने में से उनके घाटे पूरे करने का वायदा करती हैं। **यानी मुनाफ़े का निजीकरण और घाटे का समाजीकरण!! यही है सरकार की उदारीकरण और निजीकरण की नीति का मूल मन्त्र।**

सरकारों के लिए एक ही झटके में बिजली बोर्डों का निजीकरण कर पाना सम्भव नहीं है। उन्हें निजीकरण के ख़िलाफ़ ज़बरदस्त जनसंघर्षों का सामना करना पड़ रहा है। हालाँकि सभी पूँजीवादी राजनीतिक पार्टियाँ निजीकरण के मसले पर एकमत हैं, लेकिन जिन पार्टियों की सरकारें इस प्रक्रिया को आगे बढ़ाती हैं, उनका वोट बैंक कमज़ोर होता है और विपक्ष में बैठी पार्टियाँ फ़ायदा उठा जाती हैं। इसलिए चुनावी राजनीति का खेल खेलते समय सरकारें एकदम से हमला करने की स्थिति में नहीं होतीं। यह चीज़ भी निजीकरण की प्रक्रिया में अड़चन पैदा करती है। लेकिन इस सब कुछ के बावजूद यह प्रक्रिया आगे बढ़ती रही है।

पंजाब के बिजली बोर्ड के निजीकरण के ख़िलाफ़ पंजाब की जनता का संघर्ष काफ़ी प्रेरणादायी रहा है। पंजाब सरकार के मौजूदा हमले का भी उसे और भी कड़े संघर्ष के रूप में जवाब देना होगा।

**– बिगुल संवाददाता**

# कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

(पेज 1 से आगे)

आधार के रूप में स्वीकार करना ज़रूरी होगा। आगे चलकर, भारतीय उद्योगपतियों ने 1944 में जब भावी भारत के आर्थिक विकास की वृहद् योजना ('बॉम्बे प्लान' या 'टाटा-बिड़ला प्लान' के नाम से प्रसिद्ध) प्रस्तुत की, तो उसमें मिश्रित अर्थव्यवस्था (प्राइवेट सेक्टर-पब्लिक सेक्टर) का खाका पेश करने के साथ ही ब्रिटिश महाजनी पूँजी के साथ और पूरे साम्राज्यवाद के साथ सहयोग-सहकार की बात भी स्पष्ट शब्दों में कही गयी थी। दिलचस्प बात है कि बॉम्बे प्लान के प्रकाशन के तुरन्त बाद, जब कांग्रेस एक ओर सत्ता हस्तान्तरण के लिए वार्ताओं-सौदेबाज़ियों में व्यस्त थी और दूसरी ओर जनता को तरह-तरह के सपने दिखा रही थी, उसी समय संवैधानिक समझौतों के साथ-साथ ब्रिटेन और भारत के बड़े पूँजीपतियों के बीच घनिष्ठ सम्बन्ध क़ायम हो रहे थे। ब्रिटिश पूँजीपतियों के साथ बॉम्बे प्लान के तीन मुख्य सूत्रधारों – टाटा, बिड़ला और सर श्रीराम ने तभी समझौते कर लिये थे। बहरहाल, यह चर्चा हम कांग्रेस और उसके नेतृत्व में स्थापित भारतीय बुर्जुआ लोकतन्त्र के चरित्र को समझने के लिए कर रहे थे। अब हमें पीछे 1935 के 'गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट' के पारित होने के बाद के वर्षों की ओर लौटना होगा, और वहाँ से आगे के राजनीतिक घटनाक्रम के विकास पर सरसरी नज़र दौड़ानी होगी।

1935-36 के वर्षों में भारतीय राजनीति का एक ऐसा स्वरूप उभरकर सामने आया, जो बाद के वर्षों में, और 1947 के बाद भी एक आम ढर्रा के रूप में स्थापित हो जाने वाला था। यह समय था जब ऊपरी तौर पर वामपन्थी राजनीति की धारा लगातार आगे बढ़ती और शक्तिशाली होती दीख रही थी। मज़दूरों-किसानों के उग्र आन्दोलन, वामपन्थी नेतृत्व वाले जनसंगठनों की स्थापना और मध्यवर्गीय बुद्धिजीवियों के बीच वामपन्थ का प्रभाव इसके प्रमुख लक्षण थे। 1936 तक महासचिव पी. सी जोशी के नेतृत्व में कम्युनिस्ट पार्टी साम्राज्यवाद-विरोधी संयुक्त मोर्चे की रणनीति पर काम करती हुई कांग्रेस के भीतर इस उद्देश्य से काम करने लगी थी कि उसको 'साम्राज्यवाद-विरोधी जन मोर्चा' में तब्दील कर दिया जाये। लेकिन पार्टी की विचारधारात्मक कमज़ोरी और जोशी धड़े के दक्षिणपन्थी विचलन के कारण पार्टी कांग्रेस के बुर्जुआ नेतृत्व को अलग-थलग करने के बजाय स्वयं उसके हाथों इस्तेमाल हुई। लखनऊ और फ़ैज़पुर के अधिवेशनों में भरपूर वामपन्थी तेवर दिखाने वाले नेहरू वस्तुतः एक भ्रामक मुखौटा ही सिद्ध हुए। कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी के भाँति-भाँति के मध्यवर्गीय रैडिकल तत्त्व भी वास्तव में बुर्जुआ वर्ग द्वारा समय-समय पर उपयोग किये जाने वाले दबाव-समूह ही सिद्ध हुए। अन्ततः कांग्रेस के भीतर के कट्टर दक्षिणपन्थी और मध्यमार्गी तत्त्व "वामपन्थी" तूफ़ान को न केवल नियन्त्रित करने, बल्कि उसका कुशलतापूर्वक इस्तेमाल करने में सफल रहे।

कांग्रेस ने 1935 के जिस 'गवर्नमेण्ट ऑफ़ इण्डिया एक्ट' को 'गुलामी के चार्टर' की संज्ञा दी थी, उसी के तहत होने वाले 1937 के प्रान्तीय असेम्बलियों के चुनाव में उसने हिस्सा भी लिया। कारण स्पष्ट था। चुनाव बहिष्कार करके जुझारू जनसंघर्ष में उतर पड़ने के लिए कांग्रेसी नेतृत्व क़तई तैयार नहीं था। कांग्रेस में मतभेद सत्ता में भागीदारी के प्रश्न पर था। नेहरू, सुभाष और कांग्रेस के भीतर के अन्य वामपन्थियों (कांग्रेस सोशलिस्ट पार्टी वाले) का मानना था कि चुनाव जीतकर प्रान्तीय असेम्बलियों में घुसा जाये, लेकिन मन्त्रिमण्डल में शामिल न हुआ जाये, वहाँ भी 1935 के क़ानून का विरोध किया जाये, उस पर अमल न होने दिया जाये और फिर व्यापक जनान्दोलन की तैयारी की जाये। कम्युनिस्ट पार्टी (जो कांग्रेस को 'साम्राज्यवाद-विरोधी जन मोर्चा' बनाने के उद्देश्य से ट्रेडयूनियनों और किसान संगठनों को, सामूहिक तौर पर कांग्रेस से सम्बद्ध करने का निर्णय ले चुकी थी और जिसके सदस्य पहले से ही कांग्रेस में शामिल होकर काम कर रहे थे) का भी यही मानना था कि चुनाव जुझारू कार्यक्रम के आधार पर लड़े जायें किन्तु पद न ग्रहण किये जायें और सार्विक वयस्क मताधिकार के आधार पर संविधान सभा बुलाने की माँग को मुख्य सकारात्मक मुद्दा बनाया जाये। कांग्रेस के भीतर के दक्षिणपन्थी और भारतीय पूँजीपति इससे ज़रा भी चिन्तित नहीं थे। वे जानते थे कि एक बार चुनाव जीतने के बाद तमाम वामपन्थी लच्छेदार बातों के बावजूद, नेहरू और कांग्रेसी सोशलिस्ट मन्त्रिमण्डल बनाने के दबाव के आगे झुकने को बाध्य होंगे। बिड़ला ने ठाकुर दास को लिखे एक पत्र में (20 अप्रैल, 1936) भविष्यवाणी की थी कि, "आगामी चुनाव को 'वल्लभभाई का ग्रुप' नियन्त्रित करेगा और यदि लार्ड लिनलिथगो स्थिति का ठीक संचालन करें तो कांग्रेसियों के सत्ता में आने की पूरी सम्भावना है।"

फ़रवरी, 1937 में हुए चुनावों में कांग्रेस ने कुल 1,585 में से 1,161 सीटों पर चुनाव लड़ा और 716 पर जीत हासिल की। अपने घोषणापत्र में उसने 1935 के क़ानून को ख़ारिज़ करने के साथ ही नागरिक स्वतन्त्रता की बहाली, राजनीतिक बन्दियों की रिहाई, कृषि ढाँचे में आमूल बदलाव, लगान में कटौती, किसानों की ऋण-मुक्ति, मज़दूरों को यूनियन बनाने व हड़ताल करने के अधिकार देने के कई लुभावने वायदे किये थे। उसे मुख्य चुनाव प्रचारक नेहरू के रैडिकल तेवरों का भी बहुत लाभ मिला। प्रसंगवश, यह उल्लेख कर दें कि कांग्रेस को चुनाव लड़ने के लिए पूँजीपतियों से भरपूर आर्थिक मदद मिली थी। पटेल के नेतृत्व वाले कांग्रेस के केन्द्रीय संसदीय बोर्ड को बिड़ला ने 5 लाख रुपये का दान दिया। बिहार कांग्रेस द्वारा एकत्र 37,000 रुपये के चुनाव कोष में 27,000 रुपये अकेले डालमिया ने दिया था। फिर भी चुनाव लड़ने के भारी ख़र्च को देखते हुए प्रत्याशियों से अपना चुनावी ख़र्च ख़ुद उठाने को कहा गया था। इसके कारण ज़्यादातर धनवान लोग ही चुनाव लड़ पाये। बिहार में अधिकांश कांग्रेसी उम्मीदवार ज़मींदार वर्ग के थे और ज़मींदारों के ही दबाव के कारण किसान सभा के कई नेताओं को टिकट नहीं दिया गया।

चुनाव जीतने के बाद, राजेन्द्र प्रसाद और पटेल ने यह प्रस्ताव रखा कि यदि गवर्नर अपनी विशेष शक्तियों का प्रयोग न करने का आश्वासन दे तो कांग्रेस को मन्त्रिमण्डल गठित कर लेना चाहिए। किसी भी हालत में पद न ग्रहण करने का जयप्रकाश नारायण का प्रस्ताव कांग्रेस कमेटी के अधिवेशन में 78 के मुक़ाबले 135 मतों से पराजित हो गया। इसे बिड़ला ने लार्ड लिनलिथगो के निजी सचिव को लिखे गये पत्र में 'दक्षिणपन्थ की महान विजय' बताया। लार्ड लिनलिथगो द्वारा कांग्रेसी शर्त के बाबत कोई आश्वासन नहीं दिये जाने के बावजूद, जुलाई 1937 तक गाँधी भी मन्त्रिमण्डल गठन के पक्षधर हो चुके थे। बिड़ला आदि पूँजीपतियों की आशाओं के अनुरूप नेहरू को भी मना लिया गया। मद्रास, बम्बई, मध्यभारत, उड़ीसा, बिहार और संयुक्त प्रान्त में जुलाई में और फिर कुछ महीनों बाद पश्चिमोत्तर सीमा प्रान्त में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों ने पदभार सम्हाला। सिम्तबर, 1938 में कांग्रेस के "वामपन्थी" अध्यक्ष सुभाष चन्द्र बोस ने घटिया तीन तिकड़म और दलबदल के सहारे असम में भी कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनवा दिया।

प्रान्तों में कांग्रेसी शासन के अट्ठाइस महीनों ने इस पार्टी के बुर्जुआ चरित्र की विशिष्टताओं को एकदम स्पष्ट कर दिया। शुरू में तो कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों से सभी वर्गों के साम्राज्यवाद-विरोधी आन्दोलनों को विशेष प्रेरणा मिली, लेकिन इनकी सीमाएँ जल्दी ही सामने आ गयीं और मोहभंग की प्रक्रिया तेज़ हो गयी। कल तक पूर्ण स्वराज्य के लिए प्रतिबद्धता ज़ाहिर करने वाली और 1935 के अधिनियम की आलोचना करने वाली पार्टी अब उसी के अन्तर्गत शासन कर रही थी। गवर्नरों के विशेषाधिकारों, केन्द्रीय औपनिवेशिक सत्ता के अपरिमित अधिकारों, सीमित संसाधनों और औपनिवेशिक सिविल सर्विस एवं पुलिस पर निर्भरता के चलते वह घोषणापत्र के लोकरंजक वायदों को पूरा करने में क़तई समर्थ नहीं थी। सत्ता हाथ में आने के साथ ही भ्रष्टाचार, गुटबाज़ी जैसी बुराइयाँ भी जल्दी ही सामने आने लगीं। नौकरशाही के साथ कांग्रेसी सरकारों का तालमेल आश्चर्यजनक था। साम्राज्यवादी इतिहासकार आर. कूपलैण्ड को कांग्रेसी शासनकाल और उसके पहले के दिनों में 'कोई विशेष अन्तर' नहीं दीखता और वे क़ानून व्यवस्था के लिए कांग्रेसी सरकारों की प्रशंसा भी करते हैं ('दि कांस्टीट्यूशनल प्रॉब्लम इन इण्डिया, भाग-2, पृ. 135)। संयुक्त प्रान्त और बिहार के मन्त्रिमण्डलों ने गवर्नरों द्वारा सभी राजनीतिक बन्दियों की तत्काल रिहाई अस्वीकार कर दिये जाने के बाद फ़रवरी, 1938 में इस्तीफ़ा दे दिया। लेकिन यह वास्तव में एक नौटंकी थी, जो हरिपुरा कांग्रेस अधिवेशन के ठीक पहले आम कार्यकर्ताओं को भ्रम में रखने और वामपन्थियों को चुप कराने के लिए रची गयी थी। अधिवेशन के तुरन्त बाद त्यागपत्र वापस ले लिये गये जबकि गवर्नर तत्काल, सार्वजनिक रिहाई के बजाय व्यक्तिगत रिहाई के स्टैण्ड पर अटल थे। कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल वामपन्थी नेतृत्व वाले मज़दूर-किसान आन्दोलनों का साम्प्रदायिक दंगों से भी अधिक कड़ाई के साथ दमन कर रहे थे। सितम्बर, 1938 में कांग्रेस कमेटी ने "जन-धन की रक्षा के लिए" कांग्रेसी सरकारों द्वारा उठाये गये सभी क़दमों का समर्थन किया और कांग्रेसियों सहित उन सभी लोगों की निन्दा की जो "नागरिक स्वाधीनता के नाम पर हत्या, आगज़नी, लूटपाट और हिंसक तरीक़ों से वर्ग संघर्ष की हिमायत करते हैं।" कांग्रेसी शासन के शुरुआती दिनों में मज़दूर संगठनों और आन्दोलनों को विशेष बढ़ावा मिला। जनाधार बनाये रखने और कम्युनिस्टों के बढ़ते वर्चस्व का मुक़ाबला करने के लिए कांग्रेस वर्किंग कमेटी ने कथनी में मज़दूरों की माँगों का समर्थन किया। उसने बंगाल में फज़लुलहक़ और पंजाब में सिकन्दर हयात ख़ान की सरकारों द्वारा मज़दूरों के दमन की निन्दा की। लेकिन पूँजीपतियों ने जैसे ही अपनी नाराज़गी दिखायी और दबाव बनाया, वैसे ही कांग्रेसी सरकारें मज़दूर आन्दोलनों को क़ानून और डण्डे के ज़ोर से क़ाबू करने में जुट गयीं। पूँजीपतियों को प्रसन्न करने और कम्युनिस्ट नेतृत्व वाले मज़दूर आन्दोलनों को कुचलने के लिए कांग्रेस किस हद तक कटिबद्ध थी, इसे 'बॉम्बे ट्रेड्स डिस्प्यूट्स एक्ट (नवम्बर, 1938) की कड़ी धाराओं को देखकर समझा जा सकता है, जिसकी गवर्नर लुमले ने भी प्रशंसा की थी। पंजीकरण सम्बन्धी कुछ धाराओं को छोड़कर नेहरू को भी बॉम्बे एक्ट "कुल मिलाकर... अच्छा ही लगा।"

जहाँ तक किसानों का ताल्लुक है, कांग्रेस सरकारों द्वारा बनाये गये क़ानून फ़ैज़पुर अधिवेशन के मामूली प्रस्तावों को भी लागू नहीं करा सके। संयुक्त प्रान्त और बिहार कांग्रेस कमेटियों के 1936 और 1937 के ज़मींदारी उन्मूलन सम्बन्धी प्रस्तावों को भुला दिया गया। सितम्बर, 1937 में ज़मींदारों द्वारा आन्दोलन की धमकी से घबराकर बिहार की कांग्रेस सरकार ने काश्तकारी विधेयक को काफ़ी नरम बना दिया। फिर दिसम्बर, 1937 में मौलाना आज़ाद और राजेन्द्र प्रसाद ने ज़मींदारों से एक गुप्त समझौता किया। निश्चित ही, ब्याज़ की दरों को कम करके किसानों पर क़र्ज़ का बोझ कम करने, लगान में बढ़ोत्तरी पर रोक लगाने, अवध में क़ानूनी काश्तकारों को पुश्तैनी दख़ली रैयतों का दर्जा देने, बिहार में मन्दी के ज़माने में बकाश्त ज़मीनों से बेदख़ल किये गये दख़ली रैयतों की पुरानी स्थिति एक हद तक बहाल करने और बम्बई में रैयतवारी जोतधारियों के खोटी शिकमी काश्तकारों को कुछ हक़ देने तथा चराई शुल्क समाप्त करने जैसे सीमित भूमि-सुधार के कुछ क़दम कांग्रेसी सरकारों ने उठाये, लेकिन याद रखना होगा कि इनके पीछे उन जुझारू किसान आन्दोलनों का विशेष हाथ था, जिनका नेतृत्व या तो कम्युनिस्टों के हाथ में था या सहजानन्द या अन्य कुछ स्थानीय जुझारू किसान नेताओं के हाथ में। यह भी उल्लेखनीय है कि साम्राज्यवादी इतिहासकार कूपलैण्ड भी स्वीकार करता है कि भूमि-सुधार के इन सीमित क़दमों के दौरान ज़मींदारों के साथ दुर्व्यवहार नहीं किया गया और इस मायने में कांग्रेस की नीति लगभग रूढ़िवादी थी। वामपन्थ की ओर आकर्षित किसान नेता संन्यासी स्वामी सहजानन्द कांग्रेस के किसान-विरोधी और वर्ग सहयोगवादी नीति के कटुतम आलोचकों में से एक थे।

प्रान्तों में कांग्रेसी शासन के दौर को आर्थिक इतिहासकार क्लाड मार्कोवित्ज़ ने भारतीय व्यापारी समुदाय और कांग्रेस के बीच 'स्थायी मैत्री' स्थापित होने का दौर बताया है। व्यापक जनसमुदाय, विशेषकर किसान आबादी में आधार बनाये रखने और मज़दूरों को कम्युनिस्ट नेतृत्व में लामबन्द होने से रोकने के लिए कुछ कल्याणकारी विधि-निर्माण का काम करना ही था और कुछ लोकरंजक राष्ट्रीय नारे देने ही थे। इस विवशता को बिड़ला जैसे कुछ दूरन्देश पूँजीपति समझते थे। वे जानते थे कि राष्ट्रीय आन्दोलन पर बुर्जुआ वर्चस्व के लिए और कांग्रेस के जनाधार के लिए यह ज़रूरी है। ऐसी स्थिति में, अपने हितों की रक्षा के लिए वे कई सन्तुलनकारी क़दम उठाते रहते थे। संयुक्त प्रान्त के एक बड़े उद्योगपति जे.पी. श्रीवास्तव ने वायसराय वेवेल को बताया था कि 1937 में संयुक्त प्रान्त में कांग्रेसी शासन के दौरान वहाँ के प्रमुख उद्योगपतियों ने (जो सभी हिन्दू थे) कांग्रेस का विरोध करने के लिए हिन्दू महासभा के साथ ही जिन्ना और मुस्लिम लीग को भी धन देने का निश्चय किया था। तमाम संसदीय बुर्जुआ पार्टियों के बीच बुर्जुआ वर्ग यह खेल आज भी खेलता रहता है। यह भी उल्लेखनीय है कि भारतीय बुर्जुआ वर्ग एक ओर तो कांग्रेस के ज़रिये राष्ट्रीय आन्दोलन का दबाव बनाकर और अन्तरराष्ट्रीय परिस्थितियों का लाभ उठाकर राजनीतिक सत्ता हासिल करना चाहता था, दूसरी ओर ब्रिटिश पूँजी के साथ ज़्यादा से ज़्यादा अनुकूल शर्तों पर सहकार-सम्बन्ध के लिए भी प्रयासरत था। फ़ासीवाद और विश्वयुद्ध के मँड़राते ख़तरों के मद्देनज़र भारतीय पूँजीपतियों को प्रसन्न करने के लिए ब्रिटेन भी उन्हें तरह-तरह की रियायतें दे रहा था।

इस दौर में भारत की कम्युनिस्ट पार्टी की सबसे बड़ी, ऐतिहासिक चूक यह थी कि प्रान्तों की कांग्रेसी सरकारों की नीतियों और व्यवहार को उसने मुद्दा

(पेज 6 पर जारी)

**भारतीय पूँजीपति वर्ग राजनीतिक स्वतन्त्रता के निकट पहुँचते जाने के साथ ही यह समझता जा रहा था कि आधुनिक औद्योगिक भारत का नेहरू का सपना बुर्जुआ आकांक्षाओं का ही मूर्त रूप था। 'समाजवादी नियोजित अर्थतन्त्र' जैसे जुमलों से पूँजीपति आशंकित नहीं, बल्कि ख़ुश थे। वे पहले से ही इस बात को भली-भाँति समझते थे कि उत्तर-औपनिवेशिक भारत में आधारभूत और अवरचनागत उद्योगों को राज्य के नियन्त्रण में रखना ही उनके हित में होगा, क्योंकि 'पब्लिक सेक्टर' के अन्तर्गत ही जनता को निचोड़कर यातायात-परिवहन, बाँध-पनबिजली परियोजनाओं, खनिज-खदानों, इस्पात कारख़ानों आदि का विराट ढाँचा खड़ा किया जा सकता है जो पूँजीपतियों के स्वामित्व वाले उद्योगों के विकास के लिए ज़रूरी था।**

# कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

( पेज 5 से आगे )

बनाया ही नहीं। यह पार्टी के दक्षिणपन्थी विचलन का ही नतीजा था कि संयुक्त मोर्चे का मतलब हर हाल में कांग्रेस के शीर्ष नेतृत्व से एकता बनाये रखना हो गया था। इस स्थिति में, कांग्रेस को साम्राज्यवाद-विरोधी व्यापक जन मंच में तब्दील करने और राष्ट्रीय आन्दोलन पर सर्वहारा वर्चस्व स्थापित करने तथा मज़दूर-किसान संश्रय के आधार पर राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध का नेतृत्व अपने हाथ में ले पाने के बजाय कम्युनिस्ट पार्टी अपनी स्वतन्त्र पहलक़दमी खोकर कांग्रेस की पिछलग्गू बन गयी और उसके बुर्जुआ नेतृत्व द्वारा कुशलतापूर्वक इस्तेमाल की गयी। पी.सी. जोशी के अनुसार उस समय का "सबसे बड़ा वर्ग-संघर्ष राष्ट्रीय संघर्ष" था और इसके लिए हर हाल में कांग्रेस से एकता बनाये रखना था। जिस समय कांग्रेसी 1935 के क़ानून के क्रियान्वयन को असम्भव बनाने और सार्विक मताधिकार के आधार पर संविधान सभा के चुनाव के लिए दबाव बनाने के अपने पूर्व निर्णय को ताक पर रखकर, बस सरकारें चला रहे थे, मज़दूरों का दमन कर रहे थे, किसानों के साथ विश्वासघात कर रहे थे; जब उनका असली चरित्र नंगा होकर सामने आ रहा था और जनसमुदाय से उनका अलगाव बढ़ता जा रहा था, उस समय भी, आगे बढ़कर राष्ट्रीय आज़ादी, संविधान सभा के सार्विक मताधिकार आधारित चुनाव और आमूलगामी भूमि-सुधार की माँगों पर जनता को लामबन्द करने और पहलक़दमी हाथ में लेने के बजाय कम्युनिस्ट पार्टी हर हाल में कांग्रेस के साथ एकता बनाये रखने के लिए चिन्तित थी (जबकि कांग्रेसी कम्युनिस्टों के प्रति ज़्यादा से ज़्यादा शंका और शत्रुता का रुख़ अपनाते जा रहे थे)। कांग्रेस के त्रिपुरी अधिवेशन में पूरे वामपक्ष के समर्थन से सुभाष चन्द्र बोस ने अध्यक्ष पद के गाँधी समर्थित उम्मीदवार सीतारमैया को हराया था। फिर दक्षिणपन्थी धड़े और गाँधी के एकजुट आक्रमण और नेहरू के अवसरवादी ढुलमुलपन के चलते सुभाष को न केवल इस्तीफ़ा देना पड़ा बल्कि कालान्तर में कांग्रेस से भी बाहर होना पड़ा। सुभाष चन्द्र बोस का इतिहास ऐसा था कि उनको साथ लेकर कम्युनिस्ट भरोसे के साथ कांग्रेस के रूढ़िवादियों से मोर्चा नहीं ले सकते थे। लेकिन त्रिपुरी संकट ने उन्हें कांग्रेस की मज़दूर-विरोधी और किसान-विरोधी नीतियों को मुद्दा बनाकर पहलक़दमी अपने हाथ में लेने का एक अवसर ज़रूर दिया था जिसका वे ज़रा भी लाभ न उठा सके।

1939 में द्वितीय विश्वयुद्ध की शुरुआत हुई। 3 सितम्बर 1939 को प्रान्तीय मन्त्रिमण्डलों या किसी भी भारतीय नेता से सलाह लिये बिना वायसराय लार्ड लिनलिथगो ने फ़ासिस्ट जर्मनी के विरुद्ध ब्रिटेन के युद्ध में भारत के भी शामिल होने की घोषणा कर दी। कांग्रेस फ़ासीवाद विरोधी युद्ध में ब्रिटेन का साथ देने के लिए ये न्यूनतम शर्तें रख रही थी : युद्ध पश्चात् सार्विक मताधिकार आधारित संविधान सभा का वायदा और केन्द्र में वास्तविक उत्तरदायी सरकार की स्थापना। वायसराय ने इन न्यूनतम शर्तों को भी सिरे से ख़ारिज़ कर दिया। 'डोमिनियन स्टेटस' के अनिश्चित-अस्पष्ट पेशकश से आगे जाने के लिए उपनिवेशवादी क़तई तैयार नहीं थे। ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग के कट्टरपन्थी राजनीतिक प्रतिनिधि युद्धकालीन स्थितियों का लाभ उठाकर भारत में नौकरशाही की निरंकुश सत्ता क़ायम करना चाहते थे, भारतीय जन और संसाधनों का बलपूर्वक युद्ध में इस्तेमाल करना चाहते थे और इस बात के लिए कटिबद्ध थे कि यदि भारतीय बुर्जुआ वर्ग की पार्टी कांग्रेस युद्ध का लाभ उठाकर राजनीतिक आज़ादी की माँग के लिए दबाव बनाती है और यदि भारतीय जनता उग्र आन्दोलन का रास्ता पकड़ती है तो उसे कुचल दिया जायेगा। ब्रिटिश बुर्जुआ वर्ग के उदारपन्थी प्रतिनिधियों का आकलन था कि भारतीय स्वाधीनता की माँग को बहुत दिनों तक दबाया नहीं जा सकता, इसलिए उचित यही होगा कि सम्भावित जनक्रान्ति के ख़तरे को रोकने के लिए भारतीय बुर्जुआ वर्ग के राजनीतिक प्रतिनिधियों को युद्धोत्तर काल में संविधान सभा और प्रतिनिधि सरकार के गठन का आश्वासन दे दिया जाये और फ़ासिस्ट जर्मनी के विरुद्ध भारतीय जनता की व्यापक लामबन्दी में कांग्रेस की मदद ली जाये। उनकी मंशा थी कि युद्ध के बाद इन शर्तों पर कांग्रेस को सत्ता सौंपी जाये कि भारत में ब्रिटेन के आर्थिक हित (शोषण के अधिकार) अक्षुण्ण बने रहेंगे। वे चाहते थे कि युद्ध पश्चात् भी सौदेबाज़ी में कांग्रेस पर दबाव बनाने के लिए मुस्लिम लीग की पाकिस्तान की माँग और देसी रजवाड़ों के भारत में शामिल होने या न होने की आज़ादी को हवा दिया जाये तथा देश के विभाजन के विकल्प को भी, फ़ायदेमन्द हो तो, आज़माया जाये। ज्ञातव्य है कि एमरी और क्रिप्स जैसे लेबर नेता जून, 1939 में ही नेहरू और कृष्णमेनन को उनकी ब्रिटेन यात्रा के दौरान वायदा कर चुके थे कि अगली लेबर सरकार सार्विक वयस्क मताधिकार आधारित संविधान सभा को इस शर्त पर पूर्णरूपेण सत्ता हस्तान्तरित कर देगी कि भारत में ब्रिटिश दायित्वों और हितों की रक्षा की जायेगी। मई, 1940 में ब्रिटेन की मिली-जुली राष्ट्रीय सरकार बनी और घोर अनुदारवादी चर्चिल प्रधानमन्त्री बना। चर्चिल ब्रिटिश साम्राज्य की रक्षा के लिए जर्मनी से दृढ़निश्चयी निर्णायक संघर्ष का हामी था, इसलिए पूरी दुनिया के फ़ासीवाद-विरोधी जनवादी लोगों में भी मित्र राष्ट्रों के एक अगुवा नेता के रूप में उसकी प्रतिष्ठा थी, लेकिन उपनिवेशों की स्वाधीनता के प्रश्न पर उसका रुख़ पूरी तरह से निरंकुश दमनकारी था। फलत: उसके मन्त्रिमण्डल में एटली और क्रिप्स जैसे लेबर नेताओं की मौजूदगी का कोई मतलब नहीं रह गया।

**कांग्रेस को साम्राज्यवाद-विरोधी व्यापक जन मंच में तब्दील करने और राष्ट्रीय आन्दोलन पर सर्वहारा वर्चस्व स्थापित करने तथा मज़दूर-किसान संश्रय के आधार पर राष्ट्रीय मुक्ति युद्ध का नेतृत्व अपने हाथ में ले पाने के बजाय कम्युनिस्ट पार्टी अपनी स्वतन्त्र पहलक़दमी खोकर कांग्रेस की पिछलग्गू बन गयी और उसके बुर्जुआ नेतृत्व द्वारा कुशलतापूर्वक इस्तेमाल की गयी। ... जिस समय कांग्रेसी ...मज़दूरों का दमन कर रहे थे, किसानों के साथ विश्वासघात कर रहे थे; जब उनका असली चरित्र नंगा होकर सामने आ रहा था और जनसमुदाय से उनका अलगाव बढ़ता जा रहा था, उस समय भी, आगे बढ़कर राष्ट्रीय आज़ादी, संविधान सभा के सार्विक मताधिकार आधारित चुनाव और आमूलगामी भूमि-सुधार की माँगों पर जनता को लामबन्द करने और पहलक़दमी हाथ में लेने के बजाय कम्युनिस्ट पार्टी हर हाल में कांग्रेस के साथ एकता बनाये रखने के लिए चिन्तित थी...**

अगस्त, 1940 में लिनलिथगो ने भारतीय बुर्जुआ नेतृत्व को एक प्रस्ताव दिया। इसमें भी अनिश्चित सुदूर भविष्य में 'डोमिनियन स्टेटस' और युद्ध पश्चात् संविधान बनाने के लिए एक निकाय के गठन (इसमें सार्विक मताधिकार का कोई उल्लेख नहीं था) का वायदा किया गया था। तुष्टीकरण के लिए वायसराय की कार्यकारिणी का इस प्रकार विस्तार किया गया कि अब उसमें भारतीयों का बहुमत था (हालाँकि ये भारतीय घोर राजभक्त थे और इस कार्यकारिणी के अधिकार भी अतिसीमित थे)। एक राष्ट्रीय प्रतिरक्षा परिषद भी बनायी गयी, जिसका काम बस सलाह देना था।

मुस्लिम लीग के दावों को बढ़ावा देना युद्धकालीन साम्राज्यवादी रणनीति का एक अंग था। यह 'बाँटो और राज करो' की उसी पुरानी औपनिवेशिक नीति की निरन्तरता थी, जो ब्रिटिश शासकों ने बीसवीं शताब्दी के शुरू से ही (विशेषकर मार्ले-मिण्टो रिफ़ॉर्म के समय से) लगातार लागू की थी और साम्प्रदायिक आधार पर हिन्दुओं-मुसलमानों को बाँटकर राष्ट्रीय मुक्ति संघर्ष को कमज़ोर करने की हर सम्भव कोशिशें की थी। साम्प्रदायिकता की परिघटना का विश्लेषण और इतिहास-चर्चा यहाँ सम्भव नहीं। यह विषयान्तर होगा। यहाँ बस हम इतना उल्लेख कर सकते हैं कि साम्प्रदायिकता आधुनिक इतिहास (पूँजीवाद के युग की) की परिघटना है और इसका विकास राष्ट्रवाद की परिघटना के साथ-साथ हुआ है। भारत में साम्प्रदायिकता के विकास के जटिल सामाजिक-आर्थिक कारण उपनिवेशीकरण के दौर में मौजूद रहे हैं। प्रारम्भिक जुझारू राष्ट्रवाद के अन्दर मौजूद धार्मिक पुनरुत्थानवादी प्रवृत्ति भी आगे चलकर नरमपन्थी साम्प्रदायिक राजनीति के उद्भव में सहायक बनी और फिर नरमपन्थी साम्प्रदायिक राजनीति की एक तार्किक परिणति इनायतुल्ला ख़ान मशरिकी के ख़ाकसार, हिन्दू महासभा और राष्ट्रीय स्वयंसेवक संघ जैसे फ़ासिस्ट प्रकृति के साम्प्रदायिक संगठनों के रूप में सामने आयी। ऐसे कट्टरपन्थी साम्प्रदायिक संगठनों ने तनाव व दंगे उकसाकर साम्प्रदायिक अलगाव बढ़ाकर औपनिवेशिक सत्ता की काफ़ी मदद की। साथ ही, यह एक सच्चाई है कि कांग्रेस के बहुतेरे नेता भी नरमपन्थी साम्प्रदायिक मानसिकता के थे। इस चीज़ का, कांग्रेस के ग्रामीण लोकवाद की राजनीति का (जिसे शहरी साक्षर मुसलमान हिन्दुत्व और हिन्दू की राजनीति से जोड़ते थे), और हिन्दू-मुस्लिम एकता का जेनुइन पैरोकार होने के बावजूद, अपने सामाजिक आदर्शों को हिन्दू धर्म के मिथकों में प्रस्तुत करने तथा हिन्दू धर्म का आदर्शीकरण करने की गाँधी की लोकरंजकतावादी प्रवृत्ति का मुस्लिम साम्प्रदायिक नेताओं ने भरपूर इस्तेमाल किया और चौथे दशक के अन्त तक मुस्लिम लीग मुसलमानों के एक बड़े हिस्से को विश्वास दिलाने में सफल रही कि कांग्रेस मूलत: हिन्दुओं की पार्टी है। 1937 में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डल बनने की प्रक्रिया में और उसके बाद सत्ता की राजनीति का जो बुर्जुआ खेल शुरू हुआ, उसमें कांग्रेस ने भी वह ज़मीन तैयार की, जो मुस्लिम लीग की अलगाववादी राजनीति के लिए अनुकूल थी। यह भी इतिहास का तथ्य है कि किस प्रकार एक बुर्जुआ पार्टी (कांग्रेस) में शीर्ष पर पहुँचने और भविष्य में सत्ता सम्हालने की महत्त्वाकांक्षा विफल होने के बाद, एक राष्ट्रवादी मुसलमान नेता (जिन्ना) ने धार्मिक अस्मिता की राजनीति का सहारा लिया और कालान्तर में अलगाववादी साम्प्रदायिक राजनीति का सूत्रधार बन गया। बहरहाल, इन परिस्थितियों का ब्रिटिश उपनिवेशवादियों ने भरपूर लाभ उठाया। 1937 में संयुक्त प्रान्त में मिली-जुली सरकार बनाने के मुस्लिम लीग के प्रस्ताव को कांग्रेस ने अस्वीकार कर दिया था। लीग का आधार उस समय अभिजात मुसलमानों में था और वह भूमि-सुधारों के कांग्रेसी प्रस्तावों का विरोध करती थी। अत: कांग्रेस की सोच यह थी कि लीग को साथ लेने के बजाय व्यापक जनसम्पर्क आन्दोलन चलाकर आम मुसलमानों के बीच जनाधार बनाया जाये। यह सोच तो अमल में नहीं आयी (कांग्रेसी तो राजकाज चलाने में ही उलझे रहे), लेकिन मुस्लिम लीग ने आम मुसलमानों के बीच एक लोकप्रिय छवि बनाने की जी तोड़ कोशिश की और इसमें सफल भी रही। उसने पूर्ण स्वाधीनता के सिद्धान्त को स्वीकार किया, बड़े पैमाने पर आम सदस्यों की भर्ती की तथा पंजाब के मुख्यमन्त्री और यूनियनिस्ट नेता सिकन्दर हयात ख़ान और बंगाल के मुख्यमन्त्री और कृषक प्रजा पार्टी के नेता फ़ज़लुल हक़ को भी साथ लेने में सफल रही। लेकिन लीग की राजनीति की तरक्की का सर्वप्रमुख कारण था किसी प्रकार के जुझारू कार्यक्रम लागू कर पाने में कांग्रेसी मन्त्रिमण्डलों की विफलता।

23 मार्च, 1940 को मुस्लिम लीग के लाहौर अधिवेशन ने पाकिस्तान के नारे को अन्तिम रूप देते हुए जो प्रसिद्ध प्रस्ताव पारित किया, उसके पीछे अंग्रेज़ों के प्रोत्साहन की विशेष भूमिका थी, तत्कालीन भारत सचिव जेटलैण्ड और वायसराय लिनलिथगो के दस्तावेज़ इसके स्पष्ट प्रमाण प्रस्तुत करते हैं। यह प्रस्ताव दरअसल काफ़ी अस्पष्ट था। विभाजन की इसमें कहीं स्पष्ट चर्चा नहीं थी और मुख्यत: इसका अर्थ निकलता था : एक ढीले-ढाले संघ के अन्तर्गत पूर्ण स्वायत्तता। जिन्ना के लिए पाकिस्तान का नारा एक सौदेबाज़ी का साधन था, जिसके द्वारा वे कांग्रेस को सम्भवत: मिलने वाली संवैधानिक रियायतों की राह में रोड़ा अटका सकते थे और मुसलमानों के नेता के रूप में सत्ता में अपने हिस्से का दावा पेश कर सकते थे। अंग्रेजों के लिए यह नारा इसलिए उपयोगी था कि इसके माध्यम से वे संवैधानिक गतिरोध बनाये रख सकते थे और कांग्रेस के दबावों का मुक़ाबला कर सकते थे।

विडम्बना यह थी कि स्वयं कांग्रेस का नेतृत्व औपनिवेशिक सत्ता पर किसी प्रकार का जनान्दोलनात्मक दबाव बना पाने की स्थिति और मन:स्थिति में नहीं था। गाँधी और नेतृत्व पर हावी दक्षिणपन्थी धड़ा जनता और क़तारों को लगातार संयम का उपदेश देता रहा और कोशिश करता रहा कि अंग्रेज़ों से किसी क़िस्म का समझौता हो जाये। लेकिन सरकार के अड़ियलपन और जनता, कांग्रेसी कार्यकर्ताओं और वामपन्थी धड़े के भारी दबाव के कारण रामगढ़ कांग्रेस (मार्च, 1940) में 'संगठन के इस योग्य होते ही' सविनय अवज्ञा आन्दोलन छेड़ने की बात कही गयी तथा इसका समय और स्वरूप तय करने की ज़िम्मेदारी गाँधी पर छोड़ दी गयी। अक्टूबर से आन्दोलन शुरू भी हुआ, लेकिन यह बेहद प्रभावहीन और सीमित था, इतना कि सरकार को कोई कड़ी दमनमूलक कार्रवाई भी नहीं करनी पड़ी। इसका कारण क्या था? – इसे जानने के लिए भारतीय पूँजीपति वर्ग की स्थिति और अवस्थिति को समझना होगा। प्रथमदृष्टया, स्वाभाविक बात तो यह लगती है कि जब अन्तरसाम्राज्यवादी प्रतिस्पर्द्धा युद्ध के रूप में फूट पड़ी हो तो इसका लाभ उठाकर भारतीय पूँजीपति वर्ग राजनीतिक स्वाधीनता की कोशिश करे। पर भारतीय पूँजीपति वर्ग औपनिवेशिक सत्ता से मुक्ति की चाहत से भी अधिक इस बात से डरता था कि किसी व्यापक जनसंघर्ष में जनता की पहलक़दमी और उग्र परिवर्तनकामी जनाकांक्षाओं का ज्वार कहीं उसके पकड़ से बाहर न चला जाये और किसी आमूलगामी जनक्रान्ति का सबब न बन जाये। इसलिए जनता में जब किसी उग्र उभार की स्थिति होती थी तो कांग्रेसी नेतृत्व भरसक आन्दोलन को नरम बनाने या टालने की कोशिश करता रहता था। भारतीय पूँजीपति वर्ग किसी व्यापक जनान्दोलन के बजाय युद्ध से ज़्यादा से ज़्यादा आर्थिक लाभ उठाने और अपनी औद्योगिक-वित्तीय पूँजी की ताक़त बढ़ाने के बारे में व्यग्र था। पहले महायुद्ध का अनुभव उसके सामने था और उसका सोचना सही भी था। युद्धकालीन माँग के कारण भारतीय औद्योगिक विकास को बड़ा बल मिला, क्योंकि आयात बन्द हो गये थे। अंग्रेज़ चाहकर भी भारतीय उद्योगपतियों के शक्ति-संवर्धन की इस प्रक्रिया को रोक नहीं सकते थे। भारतीय व्यापारी और दुकानदार युद्ध की स्थिति में ज़्यादा से ज़्यादा लाभ कमा लेना चाहते थे, ख़ासकर ऐसी स्थिति में जबकि युद्ध देश की भूमि से काफ़ी दूर लड़ा जा रहा था। ख़लीकुज़्ज़मा (लीगी नेता) के अनुसार, मुस्लिम ज़मींदार और ताल्लुकेदार लकड़ी, कोयला आदि के ठेके पाने के लिए, अंग्रेज़ों से ज़्यादा से ज़्यादा सहयोग के लिए लीग पर दबाव डाल रहे थे। निश्चय ही, कांग्रेस भी ऐसे दबावों से अछूती नहीं रही होगी।

कम्युनिस्ट पार्टी के सामने एक बार फिर यह अवसर था कि वह कांग्रेस के बुर्जुआ नेतृत्व की

( पेज 7 पर जारी )

# कैसा है यह लोकतन्त्र और यह संविधान किनकी सेवा करता है?

( पेज 6 से आगे )

इस कमज़ोरी का लाभ उठाती और साम्राज्यवादी युद्ध में ब्रिटिश उपनिवेशवादियों के उलझाव की अनुकूल स्थिति में राजनीतिक आज़ादी और संविधान सभा की माँग को केन्द्रीय नारा बनाकर देशव्यापी संघर्ष छेड़ देती। लेकिन पार्टी नेतृत्व अपनी विचारधारात्मक-राजनीतिक-सांगठनिक कमज़ोरियों के शुरू से जारी सिलसिले और विशेषकर पी.सी. जोशी के नेतृत्व काल के दक्षिणपन्थी भटकाव के चलते निर्णायक हो पाने की स्थिति में ही नहीं थी। नतीजतन, वामपन्थी नेतृत्व छिटफुट और स्थानीय संघर्षों से ऊपर उठकर ब्रिटिश शासन के लिए कोई देशव्यापी चुनौती नहीं प्रस्तुत कर सका।

1941 के उत्तरार्द्ध में रूस पर हिटलर के हमले के बाद भारत की कम्युनिस्ट पार्टी ने फ़ासीवाद विरोधी 'जनयुद्ध' को पूर्ण समर्थन देने की लाइन ली। हालाँकि उसने स्वतन्त्रता और तत्काल राष्ट्रीय सरकार के गठन की माँग को दुहराया, लेकिन इन माँगों पर कोई देशव्यापी आन्दोलन खड़ा करना उसके एजेण्डे पर नहीं था, क्योंकि वह सोवियत संघ के साथ फ़ासीवाद-विरोधी युद्ध में खड़े ब्रिटेन के विरुद्ध निर्णायक संघर्ष करके फ़ासीवाद-विरोधी विश्वव्यापी मोर्चे की कमज़ोर नहीं करना चाहती थी। लेकिन कम्युनिस्ट पार्टी की यह सोच ग़लत थी। विश्व स्तर के समीकरणों में सोवियत संघ के साथ धुरी शक्तियों के विरुद्ध मोर्चा बनाना ब्रिटेन और सभी पश्चिमी साम्राज्यवादियों की मज़बूरी थी। आज यह स्थापित सत्य है कि ब्रिटेन और उसके साम्राज्यवादी मित्रों की सोच यह थी कि समाजवाद के सोवियत दुर्ग को फ़ासिज़्म की आँधी ढहा देगी और इस प्रक्रिया में फ़ासिस्ट ताक़तें जब कमज़ोर पड़ जायेंगी तो वे उनसे निपट लेंगे। हिटलर की 200 डिवीज़नों से अकेले सोवियन संघ जूझ रहा था (मात्र 54 डिवीज़नें यूरोप में तैनात थीं), लेकिन बार-बार कहने के बावजूद यूरोप में मोर्चा खोलने में काफ़ी देर की गयी। ऐसी स्थिति में भारतीय कम्युनिस्ट यदि भारत में राष्ट्रव्यापी संघर्ष का दबाव बनाते तो अंग्रेज़ों से राष्ट्रीय स्वाधीनता के लिए और संविधान सभा के लिए आश्वासन लेने और राष्ट्रीय आन्दोलन के कांग्रेसी नेतृत्व के सामने प्रभावी चुनौती प्रस्तुत करने के साथ ही ब्रिटेन पर पश्चिम में भी युद्ध का मोर्चा खोलने का दबाव बना सकते थे। सोवियत संघ की इस तरह से वास्तविक मदद की जा सकती थी। वैसे भी, फ़ासीवाद-विरोधी जनयुद्ध को भारतीय कम्युनिस्टों के समर्थन से सोवियत संघ या जनयुद्ध को कोई वास्तविक मदद नहीं मिली। इस दौरान भारतीय कम्युनिस्टों की एक और गम्भीर ग़लती अगस्त-सितम्बर 1942 में गंगाधर अधिकारी द्वारा प्रस्तुत यह विचित्र प्रस्थापना थी कि बहुराष्ट्रीय भारत में सिन्धी, बलूची, पंजाबी (मुसलमान) और पठान आदि मुस्लिम राष्ट्रीयताएँ हैं और इस रूप में इन्हें आत्मनिर्णय का अधिकार है। प्रकारान्तर से यह मुस्लिम लीग के अलगाववादी नारों का समर्थन था और इसका लाभ उपनिवेशवादियों को भी मिलना ही था। इन दो गम्भीर ग़लतियों ने भारतीय कम्युनिस्ट आन्दोलन को गम्भीर धक्का पहुँचाया और ग्रास रूट स्तर पर मज़दूरों-किसानों के जुझारू संघर्षों और उनमें अपनी गहरी साख के बावजूद राष्ट्रीय आन्दोलन का नेतृत्व कांग्रेस के हाथों से छीनने के मामले में कम्युनिस्ट काफ़ी पीछे छूट गये तथा पार्श्वभूमि में धकेल दिये गये।

जनवरी, 1942 में कम्युनिस्ट पार्टी 'जनयुद्ध' के समर्थन का आह्वान कर रही थी, उस समय कांग्रेस के विभिन्न धड़े, गाँधी और बोस के अनुयायी अलग-अलग तरीक़े से सोच रहे थे। कुछ ऐसा सोच रहे थे कि इस समय ब्रिटेन हार रहा है और यह राजनीतिक स्वाधीनता के लिए दबाव बनाने का सुनहरा अवसर है। कुछ सोच रहे थे कि ब्रिटेन पर समझौते के लिए दबाव बनाने से आगे नहीं बढ़ा जाना चाहिए, क्योंकि इससे जनक्रान्ति का और कमान कांग्रेस के हाथों से निकल जाने का ख़तरा होगा। नेहरू चाहते थे कि (क्रिप्स मिशन के दौरान) कोई न कोई समझौता हो जाये और फ़ासीवाद विरोधी संयुक्त मोर्चे में भारत शामिल हो जाये। एम.एन. राय और उनके अनुयायी विश्वयुद्ध को फ़ासीवाद-विरोधी युद्ध मानकर इस नतीजे पर पहुँचे थे कि बिना शर्त ब्रिटेन का साथ दिया जाना चाहिए। 1940 के सत्याग्रह के बाद नज़रबन्द सुभाष बोस अफ़गानिस्तान से रूस होते हुए जर्मनी पहुँच चुके थे। प्रथम विश्वयुद्ध के आतंकवादी क्रान्तिकारियों की भाँति उनकी रणनीति आन्तरिक ताक़तों पर निर्भरता के बजाय ब्रिटेन के शत्रुओं से मदद लेकर सैन्य बल से स्वाधीनता हासिल करने की थी। आगे चलकर जर्मनी के बजाय जापान से मदद लेना, भारतीय युद्धबन्दियों और प्रवासियों को लेकर आज़ाद हिन्द फ़ौज बनाना, बर्मा के रास्ते पूर्वोत्तर भारत में प्रवेश करना और फिर जापान के पीछे हटने और पराजय के साथ ही इस प्रयास की विफलता – यह आगे की सर्वज्ञात कथा है। यह सुभाष बोस की मध्यवर्गीय अराजकतावादी वामपन्थी राष्ट्रभक्ति का नाटकीय चरमोत्कर्ष और तार्किक परिणति थी। कांग्रेस के बाहर की बात करें। लीग इस पूरे दौर में अपने अलगाववादी एजेण्डे पर काम करती हुई ब्रिटिश सत्ता के साथ खड़ी रही, फ़ासीवाद-विरोधी किसी सैद्धान्तिक स्टैण्ड के चलते नहीं बल्कि कांग्रेस को पछाड़कर उपनिवेशवादियों की मदद से अपना हित साधने के लिए। पाकिस्तान के नारे के इर्दगिर्द एक लोकवादी, लफ़्फ़ाज़ीभरी साम्प्रदायिकता विकसित हुई जो स्वतन्त्र मुस्लिम राज्य को हर मर्ज़ की दवा बताते थे। डॉ. अम्बेडकर (1942 से 1946 तक) श्रम विभाग में गवर्नर जनरल के प्रशासक थे। उनका मुख्य एजेण्डा था कांग्रेस के नेतृत्व में मिलने वाली स्वाधीनता का विरोध करना। वे मानते थे कि ऐसी स्वाधीनता दलितों के लिए सवर्णों की गुलामी होगी, अत: ब्रिटिश सत्ता के रहते ही पहले दलितों की समस्या हल होनी चाहिए। राजनीतिक तौर पर केन्द्रीय और प्रान्तीय विधानमण्डलों में दलितों के लिए आरक्षण से आगे उनका एजेण्डा नहीं जाता था। यह भी उल्लेखनीय है कि 1940 में उन्होंने पाकिस्तान की माँग का समर्थन भी किया था। गोलवलकर के नेतृत्व वाली आर.एस.एस. और सावरकर की हिन्दू महासभा – दोनों ही किसी जनान्दोलन के विरोधी थे और आगे चलकर अगस्त 1942 के जन-विद्रोह का विस्फोट हुआ तो ये दोनों हिन्दू कट्टरपन्थी फ़ासिस्ट संगठन उससे पूरी तरह से अलग रहे।

दक्षिणी-पूर्वी एशिया में जापान के सैन्य अभियान की नाटकीय सफलता के बाद और भारतीय नेताओं से बातचीत के लिए अमेरिकी रूज़वेल्ट के दबाव के बाद चर्चिल को भी अहसास हुआ कि भारतीय जनमत को साथ लेने के लिए कुछ आश्वासनों और कुछ सद्भावना-प्रदर्शन की ज़रूरत है। युद्धकालीन मन्त्रिमण्डल में शामिल एटली और क्रिप्स जैसे लेबर नेता भी कांग्रेसी नेताओं एवं अन्य पक्षों से वार्ता के लिए दबाव बना रहे थे। इनके परिणामस्वरूप क्रिप्स के नेतृत्व में एक मिशन भारत आया, लेकिन अपने साथ घोषणापत्र का जो मसौदा वे लाये थे, वह नितान्त निराशाजनक था। उसपर, चर्चिल, सेनाध्यक्ष वेवेल और वायसराय लिनलिथगो जैसे अनुदारवादियों का स्पष्ट दबाव था। क्रिप्स ने आते ही घोषणा की कि "जितनी जल्दी हो सके, भारत में स्वशासन की स्थापना" ब्रिटिश नीति का उद्देश्य है। लेकिन उनके घोषणापत्र के मसौदे में युद्ध समाप्ति के बाद भारत को डोमीनियन स्टेटस (स्वतन्त्र उपनिवेश) का दर्जा देने की बात थी, उसकी स्वाधीनता की नहीं। सार्विक वयस्क मताधिकार के बजाय प्रान्तीय विधायिकाओं द्वारा निर्वाचित संविधान सभा की बात की गयी थी, जिसमें रियासतों का प्रतिनिधित्व करने के लिए उनके शासकों द्वारा नामांकित प्रतिनिधियों के लिए कुछ सीटें रखी जानी थीं। पाकिस्तान की माँग के लिए (और कुछ रियासतों के अलग अस्तित्व बनाये रखने के लिए भी) यह गुंजाइश बनायी गयी थी कि यदि किसी प्रान्त को नया संविधान स्वीकार नहीं होता तो वह अपने भविष्य के लिए ब्रिटेन से अलग समझौता कर सकेगा। ज़ाहिर है कि इन प्रावधानों पर कांग्रेसी नेतृत्व को कड़ी आपत्ति थी। नतीजतन क्रिप्स मिशन विफल हो गया और अप्रैल में क्रिप्स वापस ब्रिटेन लौट गये।

जिस समय क्रिप्स मिशन विफल हुआ, उस समय युद्ध में मित्र राष्ट्रों की पराजय का ख़तरा अधिक था। युद्ध में पाँसा पलटा। 1942 के मध्य में स्तालिनग्राद में जर्मन सेना की पाँव उखड़ने के बाद। 1942 की गर्मियों में भारतीय बुर्जुआ वर्ग की कुशलतम राजनीतिक प्रतिनिधि और रणनीति-निर्माता गाँधी समझ चुके थे कि ब्रिटिश साम्राज्यवाद पर जनान्दोलन का दबाव बनाकर अधिकतम सम्भव हासिल करने का अनुकूलतम समय आ चुका है। जुलाई 1942 में कांग्रेस कार्यसमिति की वर्धा बैठक ने संघर्ष के निर्णय की स्वीकृति दी। अगस्त में बम्बई में कांग्रेस के खुले अधिवेशन में गाँधी ने 'करो या मरो' और 'भारत छोड़ो' का नारा देते हुए स्पष्ट कहा कि स्वाधीनता से कम उन्हें कोई भी चीज़ – कोई भी रियायत स्वीकार्य नहीं। पहली बार गाँधी राजनीतिक हड़ताल के लिए तैयार थे। उल्लेखनीय है कि कांग्रेस ने निर्णायक, उग्र तेवर वाले संघर्ष का निर्णय तब लिया, जब कम्युनिस्टों का अलग रहना तय था और कांग्रेस को विश्वास था कि जनाक्रोश को वह अपने नियन्त्रण से बाहर नहीं जाने देगी। निश्चय ही, भारत छोड़ो आन्दोलन एक देशव्यापी जन-उभार था। यह साम्राज्यवाद विरोधी जनभावना की प्रचण्डतम अभिव्यक्ति थी। चोटी के कांग्रेसी नेताओं की गिरफ़्तारी के बाद भी जनसंघर्ष स्वत:स्फूर्त ढंग से जारी रहा और देश के कई अंचलों में महीनों तक आज़ाद सरकारें काम करती रहीं।

1942 के अन्त तक युद्धकालीन परिस्थितियों का लाभ उठाकर ब्रिटिश सत्ता ने जन-उभार को तो निर्ममतापूर्वक कुचल दिया लेकिन अंग्रेज़ यह समझ चुके थे कि भारत पर औपनिवेशिक सत्ता को क़ायम नहीं रखा जा सकता। विश्व परिस्थितियाँ भी अब इसके प्रतिकूल थीं और युद्ध ने ब्रिटेन की आर्थिक स्थिति भी जर्जर बना दी थी। वेवेल 1943 में भारत का वायसराय बना। अक्टूबर 1944 में चर्चिल को लिखे अपने पत्र में अनुदारवादी होते हुए भी, उसने स्पष्ट लिखा था कि युद्ध के पश्चात् अंग्रेज़ों के लिए भारत पर बलपूर्वक अधिकार जमाये रखना सम्भव नहीं होगा। उसके शब्दों में, "हमें पहले भी ऐसे ही विद्रोहियों से सन्धिवार्ता करनी पड़ी थी जैसे कि डिवैलेराँ और जगलुल के साथ। वस्तुत: युद्ध समाप्त होने के पहले ही सन्धिवार्ता करना बुद्धिमानी होगी – इसके पहले कि युद्ध की समाप्ति पर बन्दियों की रिहाई हो और सैनिकों की सेवा-समाप्ति तथा बेरोज़गारी के कारण अशान्ति फैले और आन्दोलन के लिए उपयुक्त भूमि तैयार हो। यह तभी हो सकता है जब हम उनकी (कांग्रेस की) ऊर्जा को पहले ही किसी अन्य लाभप्रद दिशा में मोड़ दें, अर्थात् उन्हें भारत की प्रशासनिक एवं संवैधानिक समस्याओं के समाधान ढूँढ़ने में लगा दें।" (वेवेल : दि वायसराय जर्नल, पृ. 97-98)। अड़ियल चर्चिल ने वेवेल के सुझाव पर कान नहीं दिया, लेकिन 1945 में लेबर पार्टी जब सत्ता में आयी तो उसने इसी प्रक्रिया को आगे बढ़ाया और कांग्रेसी नेताओं को इसके लिए सहमत करने में वह सफल भी रही।

1942 के 'भारत छोड़ो आन्दोलन' से मिले संकेतों और विश्व परिस्थितियों को देखते हुए अंग्रेज अब कांग्रेस को सत्ता हस्तान्तरित करने के लिए सोचने लगे थे। यह समय इसके लिए सर्वाधिक अनुकूल था, क्योंकि जनता की नज़रों में कांग्रेस को एक नयी प्रतिष्ठा हासिल हो चुकी थी, कम्युनिस्ट और अन्य वामपन्थी ताक़तें पीछे धकेल दी गयी थीं और बिखराव का शिकार थीं। पूँजीपति वर्ग की प्रतिनिधि पार्टी कांग्रेस नेहरू के तमाम "समाजवादी" तेवरों के बावजूद, भारत में ब्रिटिश हितों की हिफ़ाज़त के लिए तैयार थी, क्योंकि भारतीय पूँजीपति वर्ग साम्राज्यवाद से निर्णायक विच्छेद कर ही नहीं सकता था। ज़्यादा से ज़्यादा वह मोल-तोल कर सकता था। उपनिवेशवादी चाहते थे कि कांग्रेस को अपनी शर्तों पर झुकाने के लिए मुस्लिम लीग का इस्तेमाल किया जाये और या तो मुस्लिम बहुल प्रान्तों की अधिकतम स्वायत्तता वाले एक ढीले-ढाले संघ के रूप में स्वाधीन भारत अस्तित्व में आये, या फिर देश का विभाजन हो जाये। उपनिवेशवादी जानते थे कि उत्तर औपनिवेशिक दौर में भी साम्प्रदायिक अन्तरविरोधों का प्रभावी इस्तेमाल अपने हित-साधन के लिए किया जा सकता है। वे यह भी जानते थे कि कम्युनिस्ट पार्टी की तमाम कमज़ोरियों के बावजूद, उनके फिर से ताक़तवर हो उठने का और किसी सम्भावित जनक्रान्ति का भय भारतीय पूँजीपति वर्ग को और कांग्रेसी नेतृत्व को लगातार सताता रहता है। इसलिए समझौते के द्वारा सत्ता प्राप्ति की उन्हें भी काफ़ी उतावली है।

इन्ही परिस्थितियों में युद्धोत्तर काल का घटनाक्रम आगे विकसित हुआ।

**( अगले अंक में : 1945 से समझौतों-सोदेबाज़ियों का जारी सिलसिला, साम्राज्यवाद-विरोधी जनसंघर्षों का नया ज्वार, कैबिनेट मिशन और संविधान सभा का गठन )**

## राहुल सांकृत्यायन की जन्मतिथि (9 अप्रैल) और पुण्यतिथि (14 अप्रैल) के अवसर पर

**"जाति-भेद न केवल लोगों को टुकड़े-टुकड़े में बाँट देता है, बल्कि साथ ही यह सबके मन में ऊँच-नीच का भाव पैदा करता है। हमारे पराभव का सारा इतिहास बतलाता है कि हम इसी जाति-भेद के कारण इस अवस्था तक पहुँचे। ये सारी गन्दगियाँ उन्हीं लोगों की तरफ से फैलाई गयी हैं जो धनी हैं या धनी होना चाहते हैं। सबके पीछे ख्याल है धन बटोरकर रख देने या उसकी रक्षा का। गरीबों और अपनी मेहनत की कमाई खाने वालों को ही सबसे ज्यादा नुकसान है, लेकिन सहस्राब्दियों से जात-पाँत के प्रति जनता के अन्दर जो ख्याल पैदा किये गये हैं, वे उन्हें अपनी वास्तविक स्थिति की ओर नजर दौड़ाने नहीं देते। स्वार्थी नेता खुद इसमें सबसे बड़े बाधक हैं।"**

• • •

**"धर्मों की जड़ में कुल्हाड़ा लग गया है, और इसलिए अब मजहबों के मेल-मिलाप की बातें भी कभी-कभी सुनने में आती हैं। लेकिन, क्या यह सम्भव है? 'मजहब नहीं सिखाता आपस में बैर रखना' – इस सफेद झूठ का क्या ठिकाना। अगर मजहब बैर नहीं सिखलाता तो चोटी-दाढ़ी की लड़ाई में हजार बरस से आजतक हमारा मुल्क पागल क्यों है? पुराने इतिहास को छोड़ दीजिये, आज भी हिन्दुस्तान के शहरों और गाँवों में एक मजहब वालों को दूसरे मजहब वालों का खून का प्यासा कौन बना रहा है? कौन गाय खाने वालों से गो न खाने वालों को लड़ा रहा है? असल बात यह है – 'मजहब तो है सिखाता आपस में बैर रखना। भाई को है सिखाता भाई का खून पीना।' हिन्दुस्तान की एकता मजहबों के मेल पर नहीं होगी, बल्कि मजहबों की चिता पर होगी। कौवे को धोकर हंस नहीं बनाया जा सकता। कमली धोकर रंग नहीं चढ़ाया जा सकता। मजहबों की बीमारी स्वाभाविक है। उसकी मौत को छोड़कर इलाज नहीं है।"**

## बजट 2010-11 : इजारेदार पूँजी के संकट और मुनाफ़े का बोझ आम ग़रीब मेहनतकश जनता के सिर पर

# मज़दूरों, ग़रीब किसानों और निम्न मध्यवर्ग की जेब से आख़िरी चवन्नी भी चोरी!

(पेज 1 से आगे)

लाख टन का बफ़र स्टॉक होना चाहिए, जो कि उसके पास है। इसके बावजूद अगर अनाज और दालों की क़ीमतों में वृद्धि हो रही है तो उसके दो प्रमुख कारण हैं। एक, बड़े व्यापारियों और खुदरा व्यापार में घुसी बड़ी कम्पनियों द्वारा की जाने वाली जमाख़ोरी और दूसरा, वायदा कारोबार। सरल शब्दों में कहें, तो अधिक मुनाफ़ा पीटने के लिए पूँजीपतियों द्वारा अनाज और दालों की जमाख़ोरी और सट्टेबाज़ी। अगर यह न हो तो अनाज की क़ीमतें फ़ौरन नीचे आ सकती हैं। वास्तव में, सरकार द्वारा अनाज और दालों के परिवहन पर लगने वाले अतिरिक्त उत्पादन शुल्क को घटाने से सिर्फ़ बड़े किसानों और एग्रो- कम्पनियों के मुनाफ़े का मार्जिन बढ़ जायेगा। धनी किसानों और फ़ार्मरों के लिए तोहफ़ों की लिस्ट अभी ख़त्म नहीं हुई है। सरकार ने इस बजट में कहा है कि "हरित क्रान्ति" को बिहार, उत्तर प्रदेश और पश्चिम बंगाल तक विस्तारित करने के लिए 400 करोड़ रुपये की रकम आवण्टित की जा रही है। सभी जानते हैं कि पंजाब और हरियाणा में "हरित क्रान्ति" किसके लिए थी और उसका फ़ायदा किसे मिला। यह बड़े पैमाने पर ऋण, आधुनिक बीज, खाद, आदि को धनी किसानों को आसान दरों और कम ब्याज़ दर पर मुहैया कराकर पूँजीवादी कृषि को और मज़बूत करने और इन प्रदेशों के धनी किसानों और फ़ार्मरों के पूँजीवादी आधुनिकीकरण की योजना है। इसका कोई भी फ़ायदा ग़रीब या मँझोले किसान को नहीं मिलने वाला। उल्टे उसके सर्वहाराकरण की प्रक्रिया और तेज़ होगी। कृषि के क्षेत्र में पूँजी के कुछ हाथों में केन्द्रित होते जाने की प्रक्रिया और तेज़ी से आगे बढ़ेगी और बरबादी की कगार पर खड़े तमाम किसानों के बरबादी के गड्ढे में गिरने में देर नहीं लगेगी।

सरकार ने सभी अप्रत्यक्ष करों में वृद्धि कर दी है। अप्रत्यक्ष करों में हुई कुल वृद्धि है 46,500 करोड़ रुपये! इसका अर्थ यह हुआ कि खाने, ईंधन, परिवहन, रोज़मर्रा की ज़रूरत की सभी वस्तुएँ, चिकित्सा, दवा, शिक्षा, कपड़े आदि सबकुछ और अधिक महँगे हो जायेंगे। भारत की 90 फ़ीसदी जनता अपनी कुल आय का लगभग 60 फ़ीसदी हिस्सा खाने पर ख़र्च कर देती है। ऐसे में जबकि खाने की वस्तुएँ और ज़्यादा महँगी कर दी गयी हैं, तो अन्य सभी बुनियादी आवश्यकताओं का भी महँगा हो जाना आम जनता की ज़िन्दगी पर तबाही लाने वाला प्रभाव डालेगा। इसमें भी सबसे भयंकर मार इस देश के क़रीब 65 करोड़ खेतिहर और औद्योगिक मज़दूरों पर पड़ेगी। इसके बाद क़रीब 25 करोड़ निम्न मध्यवर्गीय आबादी इसकी चपेट में आयेगी। कुल मिलाकर, इस देश के 90 करोड़ से भी अधिक लोगों के जीवन-स्तर में भारी गिरावट आयेगी। कोयले की भी क़ीमत में बढ़ोत्तरी कर दी गयी है और साथ ही सभी सार्वजनिक क्षेत्रों से विनिवेश करके 40,000 करोड़ रुपये जुटाने की योजना है। यानी की जनता की गाढ़ी कमाई को पूँजीपतियों और कारपोरेट घरानों के हाथों औने-पौने दामों पर बेचकर यह रक़म जुटायी जायेगी और इन्हें वापस जनता की सेवा में लगाने के बजाय बड़े उद्योगों के लिए ज़रूरी अवसंरचना बनाने पर ख़र्च कर दिया जायेगा। यानी कि एक्सप्रेस वे बनाने, आठ लेन की सड़कें बनाने, पूँजीपतियों को सरकारी बैंकों से बेहद कम ब्याज़ दरों पर कर्ज़ देने, कारपोरेट घरानों की कर्ज़ माफ़ी के लिए रक़म जुटाने में यह पूरी रक़म ख़र्च की जायेगी, जो वास्तव में इस देश की ग़रीब जनता का पैसा है।

जहाँ एक ओर पेट्रोलियम उत्पादों की क़ीमतों में बढ़ोत्तरी और अप्रत्यक्ष करों में बढ़ोत्तरी और साथ ही सार्वजनिक उपक्रमों में विनिवेश करके क़रीब 1,00,000 रुपये आम जनता की जेब से वसूलने की योजना है, वहीं इस देश के 4 करोड़ आयकर दाताओं के लिए प्रत्यक्ष कर में 26,000 करोड़ रुपये की कटौती कर दी गयी है। यानी कि पहले से ही खाये-अघाये, वाचाल, परजीवी, सुख-सुविधा के सामानों से लदे हुए उच्च मध्यवर्ग को और अधिक मलाई और रबड़ी! और क्यों न हो? यही तो वह वर्ग है जिसकी सेवा के लिए सरकार बैठी हुई है!

अब आइये यह भी देख लें कि इस देश के टाटाओं, बिड़लाओं, अम्बानियों, जिन्दलों और मित्तलों को क्या मिला है।

कारपोरेट कर पर लगने वाले सरचार्ज को सरकार ने 10 प्रतिशत से घटाकर 7.5 प्रतिशत कर दिया है। कर्ज़ों और करों से मुक्ति के रूप में कारपोरेट घरानों को सरकार ने इस बार 5,00,000 करोड़ रुपये का तोहफ़ा दिया है। यही कारण था कि कारपोरेट घरानों के गिरोहों जैसे चैम्बर्स ऑफ़ कॉमर्स, फ़िक्की आदि से सरकार को ख़ूब शाबाशी मिली। कारपोरेट जगत की फेंकी गयी हड्डियों पर पलने वाले तमाम समाचार चैनलों ने प्रणब दा की शान में कसीदे पढ़ने शुरू कर दिये! आइये देखें, कि कारपोरेट घरानों को ये छूट किस प्रकार मिली है। सरकार ने उत्पादन शुल्क से मुक्ति के रूप में कारपोरेट घरानों को 1,70,765 करोड़ रुपयों की छूट दी, तो वहीं कस्टम ड्यूटी में इस बार मिली छूट से कारपोरेट घरानों को 2,49,021 करोड़ रुपयों का फ़ायदा हो रहा है। इन दोनों के अतिरिक्त कारपोरेट करों में छूट के रूप में सरकार ने कारपोरेट घरानों को 80,000 रुपयों की छूट दी है। यानी कि कुल छूट 5,00,000 करोड़ रुपयों की!

कृषि क्षेत्र के विकास के लिए प्रणब मुखर्जी ने काफ़ी शब्द ख़र्च किये। अब ज़रा कृषि क्षेत्र के विकास के लिए सरकार द्वारा बजट में किये गये प्रावधानों का लाभ किसे मिलने वाला है, यह भी देख लिया जाये। सरकार ने कहा है कि कृषि क्षेत्र के लिए अवसंरचना के विकास के रूप में वह बड़े निजी भण्डारण गृहों के निर्माण की छूट देगी। इसका फ़ायदा साफ़ तौर पर बड़े किसानों और एग्रो-बिज़नेस कम्पनियों को मिलेगा। बड़े भण्डारण गृहों का उपयोग पूरे देश में आज भी बड़े किसान, कुलक और फ़ार्मर कर रहे हैं और आगे भी वही करेंगे। जैसाकि हम पहले भी ज़िक्र कर आये हैं, ऋण समर्थन के रूप में आवण्टित की गयी राशि में 50,000 करोड़ रुपये की वृद्धि का लाभ भी धनी किसानों और एग्रो कम्पनियों को ही मिलने वाला है। कृषि उत्पादों के रेफ़्रिजरेशन और परिवहन सुविधा का शुल्क सरकार ने घटाया है, इसका लाभ भी कृषक पूँजीपतियों को मिलने वाला है। साथ ही, सरकार ने ग्रामीण पूँजीपति वर्ग के लिए एक बड़ी छूट और दी है। सरकार ने ग्रामीण क्षेत्रों में निजी बैंकों को इजाज़त दे दी है। सरकार का तर्क है कि इससे किसानों को ऋण और सहज रूप से उपलब्ध हो जायेगा। लेकिन यह एक बहुत बड़ा कुतर्क है। निजी बैंक हर हाल में बड़ी खेती में निवेश करने में ही दिलचस्पी रखेंगे। ऐसे में इसका लाभ भी धनी किसानों को ही मिलेगा। कृषि अवसंरचना का विकास तो आम ग़रीब जनता के पैसे और मेहनत के बल पर किया जायेगा, लेकिन उसके फ़ायदे की मलाई पूरी तरह एग्रो-बिज़नेस कम्पनियाँ और धनी किसान, फ़ार्मर और कुलक साफ़ कर जायेंगे। सरकार का कहना है कि अगर कृषि उत्पादों की क़ीमत बढ़ेगी तो फ़ायदा किसानों को मिलेगा। लेकिन कौन से किसानों को? भारत की कुल किसान आबादी में से 70 प्रतिशत मुख्यत: खाद्यान्न की ख़रीदार है। यानी कि भले ही कोई किसान कोई खाद्यान्न पैदा करता हो, उसकी कुल आय-व्यय में खाद्यान्न से होने वाली आय से खाद्यान्न पर होने वाला व्यय ज़्यादा है। ऐसे में खाद्यान्न की क़ीमतें बढ़ने से 70 प्रतिशत कृषक आबादी को नुक़सान होगा। दूसरी बात यह है कि ग़रीब किसानों को अपनी फ़सल का जो मोल मिलता है वह खुदरा क़ीमत तो दूर थोक क़ीमत से भी बहुत कम होता है। इसे फ़ार्म गेट वैल्यू कहते हैं। अनाजों की फ़ार्म गेट वैल्यू थोक भाव और खुदरा भाव दोनों से ही बेहद कम है। खुदरा और थोक रेट बढ़ने का कोई ख़ास फ़र्क़ फ़ार्म गेट मूल्य पर पड़ता भी नहीं है। बीच की बड़ी व्यापारिक कम्पनियाँ सारा मुनाफ़ा ख़ुद ही चट कर जाती हैं। बाज़ार की ताक़तें कृषि उत्पादों के मूल्य कम होने पर भी खाद्यान्न की क़ीमत में कोई कमी नहीं होने देतीं और अपने मुनाफ़े को बढ़ाती जाती हैं।

सरकार को इस बजट में देश के धनाढ्य वर्गों को करों में छूट देने के कारण 80,000 करोड़ रुपये का घाटा हो रहा है। कारपोरेट घरानों को 5,00,000 करोड़ की रियायत दी जा रही है। इससे भी सरकारी ख़ज़ाने पर काफ़ी भार पड़ने वाला है। लेकिन इसी बजट में सरकार ने अमीरों को दी गयी सहूलियतों का ख़र्च जनता की जेब से वसूलने में कोई कसर नहीं छोड़ रखी है। अप्रत्यक्ष करों में बढ़ोत्तरी और सार्वजनिक उद्यमों को बेचकर क़रीब 1,00,000 करोड़ रुपये की कमाई करने का प्रावधान सरकार ने कर दिया है। यानी, आम मेहनतकश आबादी महँगाई के रूप में इस देश के धनपतियों को एक छिपा हुआ कर देगी। अप्रत्यक्ष कर में बढ़ोत्तरी का अर्थ सीधे-सीधे यही है – आम मज़दूर और मेहनतकश आबादी बरबाद और उसके बल पर पूँजीपति और परजीवी मध्यवर्ग आबाद!

अब आइये देखें कि सरकार ने जनता को कौन-कौन से लॉलीपॉप थमाये हैं? इस बार महात्मा गाँधी राष्ट्रीय ग्रामीण रोज़गार योजना के लिए 1,000 करोड़ रुपये बढ़ा दिये गये। पहली बात तो यह है कि अगर इस बढ़ोत्तरी को मुद्रास्फ़ीति से समायोजित किया जाएये तो हम पायेंगे कि कुल आवण्टित राशि में कोई विशेष वृद्धि नहीं है। दूसरी बात यह कि जब क़रीब 40 हज़ार करोड़ रुपये के आस-पास राशि मनरेगा के तहत आवण्टित थी, तो भी उसका बड़ा हिस्सा ग्रामीण क्षेत्र में नौकरशाहों, ठेकेदारों, सरपंचों और तहसीलदारों की जेब में जा रहा था। जनता को सिर्फ़ जूठन-छाजन मिल रही थी। लेकिन धन्य हो पूँजीपतियों के जेबी मीडिया का जिसने इस योजना को ऐसा क्रान्तिकारी बना दिया कि आख़िरी लोकसभा चुनाव में कांग्रेस की सरकार इसके बूते काफ़ी वोट बटोर ले गयी! इस बार सरकार ने ग्रामीण अवसंरचना विकास के लिए क़रीब 4,000 करोड़ रुपये और कृषि विकास के लिए 900 करोड़ रुपये आवण्टित किये हैं। हम पहले ही बता आये हैं कि इस कृषि विकास और ग्रामीण अवसंरचना विकास का लाभ मूल और मुख्य रूप से ग्रामीण पूँजीपति वर्ग और ग्रामीण नौकरशाह पूँजीपति वर्ग को ही मिलना है। देश में सड़कों के निर्माण के लिए 19,894 करोड़ रुपये और रेल-मार्ग निर्माण के लिए 16,752 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। अगर नज़दीक़ी निगाह डालें तो पता चलता है कि वास्तव में इस राशि से सड़कों और रेलमार्गों का इस हद तक निर्माण नहीं किया जा सकता कि देश के जिन हिस्सों तक अभी सड़कों और रेलमार्गों की उचित मात्रा में पहुँच नहीं है, वहाँ वे पहुँच जायें। वास्तव में, इस राशि से कुछ एक्सप्रेस-वे और औद्योगिक जगत के लिए ज़रूरी कुछ सड़क और रेल-मार्गों का निर्माण किया जायेगा। साथ ही, कुछ ऐसे रास्तों का निर्माण होगा जिससे कुछ नये इलाक़ों में निवेश आकर्षित किया जा सके।

शिक्षा का अधिकार क़ानून को लागू करने के लिए जितने पैसों की ज़रूरत थी, लगभग उससे आधी रक़म का प्रावधान इस बार स्कूल शिक्षा के लिए किया गया है। हम जानते हैं कि संयुक्त प्रगतिशील गठबन्धन ने इस बार शिक्षा का अधिकार बिल पास करके काफ़ी वाहवाही लूटी है। इसके अन्तर्गत 6 से 14 वर्ष के सभी बच्चों के लिए पड़ोस के सरकारी स्कूल में नि:शुल्क व अनिवार्य शिक्षा का प्रावधान है। इसे 1 अप्रैल से लागू होना है। लेकिन अगर सरकार वाक़ई इस योजना को लागू करना चाहती है तो उसे इसके लिए सिर्फ़ 31,036 करोड़ रुपये का ही प्रावधान नहीं करना चाहिए था, बल्कि इसके दोगुने का प्रावधान करना चाहिए था। स्वास्थ्य और परिवार कल्याण के लिए मात्र 22,300 करोड़ रुपये का प्रावधान किया गया है। लेकिन दूसरी तरफ़ प्रधानमन्त्री पर होने वाले सुरक्षा ख़र्च को 212 करोड़ रुपये से बढ़ाकर 252 करोड़ रुपया कर दिया गया है। साफ़ है, देश की आम मेहनतकश जनता को शिक्षा और चिकित्सा मुहैया कराना सरकार का लक्ष्य है ही नहीं। वरना वह 5,00,000 करोड़ रुपये की छूट और तोहफ़े कारपोरेट घरानों, पूँजीपतियों और नेताओं-नौकरशाहों को नहीं देती, बल्कि इस देश की आम जनता को भोजन, मकान, चिकित्सा, शिक्षा आदि मुहैया कराने पर ख़र्च करती। लेकिन जब देश की जनता सरकार से यह माँग करती है तो सरकार कहती है कि यह उसका काम नहीं है। उसका काम है "जनता को सक्षम बनाना"!! जनता की ज़रूरतों को पूरा करना उसका काम नहीं है!! उसका काम तो जनता को लूट कर पूँजीपतियों की थैलियाँ भरना है! स्वास्थ्य और परिवार कल्याण, ग़रीबी उन्मूलन, शिक्षा और रोज़गार सृजन पर मामूली रक़मों का प्रावधान किया गया है। जबकि संयुक्त राष्ट्र की हालिया रपट के अनुसार भारत में 2008-09 के वित्तीय वर्ष में 3.4 करोड़ लोग ग़रीबी रेखा के नीचे चले गये। ग़रीबी दूर करने की बजाय सरकार ने एक अनोखा रास्ता निकाला है: ग़रीबी रेखा की परिभाषा को ही बदल दो। पहले की परिभाषा के अनुसार शहरों में 2,200 कैलोरी प्रतिदिन और गाँवों में 2,400 कैलोरी प्रतिदिन को ग़रीबी रेखा माना जाता था। हालाँकि यह ग़रीबी रेखा भी अन्यायपूर्ण थी, क्योंकि इसमें सिर्फ़ खाने का ख़र्च जोड़ा गया था (ईंधन, शिक्षा, चिकित्सा, आवास, आदि का नहीं।) लेकिन अब सरकार इसे भी नीचे करके 1800 कैलोरी पर लाना चाहती है। यह परिभाषा बदलने से पहले ही सरकार ने आँकड़ों में हेराफेरी करके ग़रीबों की संख्या क़रीब 30 करोड़ बतायी थी, जबकि वास्तव में देश की आधी से अधिक आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे जी रही है। सरकार अगर 1,800 कैलोरी को भी नया मानक बनाती है तो भी देश की क़रीब 27 करोड़ आबादी ग़रीबी रेखा के नीचे ही रहेगी। 1991 से 2001 के बीच 1 करोड़ किसान तबाह होकर भूमिहीन आबादी में शामिल हो गये। 1997 से 2008 के बीच क़रीब 2 लाख किसानों ने आत्महत्या की। इन सारी सच्चाइयों के बावजूद सरकार ने पूँजीपतियों और कारपोरेटों और धनी किसानों, फ़ार्मरों और कुलकों पर ख़र्च को बढ़ाया है और इसके लिए पैसा 80 फ़ीसदी आम मेहनतकश जनता पर बढ़े हुए कर थोप कर जुटाया है।

सरकार अप्रत्यक्ष करों में बढ़ोत्तरी के पीछे जिस बजट घाटे को पूरा करने का जो बहाना दे रही है उस घाटे के कारण और स्रोत क्या हैं? 82,000 करोड़ रुपये कारपोरेटों को दिये जाने वाली छूट का ख़र्च; 19,000 करोड़ कस्टम ड्यूटी में छूट का ख़र्च; 30,000 करोड़ उत्पादन शुल्क में छूट का ख़र्च; 46,000 करोड़ रुपये के कर छूट का ख़र्च! ऐसे में बजट घाटा नहीं होगा तो और क्या होगा? और इस पूरे घाटे की क़ीमत आम जनता को अपना पेट काट-काटकर चुकानी होगी। यही है इस पूँजीवादी व्यवस्था की सच्चाई। जब तक यह क़ायम रहेगी, हम अपना और अपने बच्चों का पेट काट-काट कर परजीवी धनाढ्य मकड़ों की तोंदें भरते रहेंगे और उनके ऐशो-आराम के सामान खड़े करते रहेंगे।

# मार्क्सवाद और सुधारवाद

## • लेनिन

अराजकतावादियों के विपरीत मार्क्सवादी सुधारों के लिए संघर्ष को, यानी मेहनतकशों की दशा में ऐसे सुधारों के लिए संघर्ष को स्वीकार करते हैं, जो सत्तारूढ़ वर्ग की सत्ता को नष्ट न करते हों। परन्तु इसके साथ ही मार्क्सवादी उन सुधारवादियों के विरुद्ध सर्वाधिक संकल्पपूर्वक संघर्ष करते हैं, जो प्रत्यक्ष अथवा परोक्ष रूप में मज़दूर वर्ग के प्रयासों तथा गतिविधियों को सुधारों तक सीमित करते हैं। सुधारवाद मज़दूरों के साथ बुर्जुआ धोखाधड़ी है, जो पृथक-पृथक सुधारों के बावजूद तब तक सदैव उजरती दास बने रहेंगे, जब तक पूँजी का प्रभुत्व विद्यमान है।

उदारतावादी बुर्जुआ एक हाथ से सुधार देते हैं और दूसरे हाथ से सदैव उन्हें छीन लेते हैं, उन्हें समेटकर शून्य बना डालते हैं, मज़दूरों को दास बनाने के लिए, उन्हें पृथक-पृथक ग्रुपों में विभक्त करने के लिए, मेहनतकशों की उजरती दासता बनाये रखने के लिए उनका इस्तेमाल करते हैं। इस कारण सुधारवाद, उस समय भी, जब वह पूर्णत: निष्कपट होता है, व्यवहार में मज़दूरों को भ्रष्ट और कमज़ोर बनाने का बुर्जुआ हथियार बन जाता है। समस्त देशों का अनुभव बताता है कि सुधारवादियों पर विश्वास करने वाले मज़दूर सदैव बेवक़ूफ़ बन जाते हैं।

इसके विपरीत, यदि मज़दूर मार्क्स के सिद्धान्त को आत्मसात कर लेते हैं, यानी वे पूँजी के प्रभुत्व के बने रहते उजरती दासता की अपरिहार्यता को अनुभव कर लेते हैं, तो वे किसी भी बुर्जुआ सुधारों से अपने को बेवक़ूफ़ नहीं बनने देंगे। यह समझकर कि पूँजीवाद के बने रहते सुधार न तो स्थायी और न महत्त्वपूर्ण हो सकते हैं, मज़दूर बेहतर परिस्थितियों के लिए लड़ते हैं तथा उजरती दासता के विरुद्ध और डटकर संघर्ष जारी रखने के लिए बेहतर परिस्थितियों का उपयोग करते हैं। सुधारवादी छोटी-मोटी रियायतों से मज़दूरों में फूट डालने, उनकी आँखों में धूल झोंकने, वर्ग संघर्ष की ओर से उनका ध्यान हटाने का प्रयत्न करते हैं। परन्तु मज़दूर सुधारवाद की मिथ्यावादिता को अनुभव कर चुकने के कारण अपने वर्ग संघर्ष का विकास तथा विस्तार करने के लिए सुधारों का उपयोग करते हैं।

सुधारवादियों का मज़दूरों पर प्रभाव जितना अधिक सशक्त होता है, मज़दूर उतने ही निर्बल होते हैं, बुर्जुआ वर्ग पर उनकी निर्भरता उतनी ही ज़्यादा होती है, तरह-तरह के दाँव-पेंचों से इन सुधारों को शून्य में परिणत कर देना बुर्जुआ वर्ग के लिए उतना आसान होता है। मज़दूर आन्दोलन जितना अधिक स्वावलम्बी तथा गहन होता है, उसके ध्येय जितने अधिक विस्तृत होते हैं, सुधारवादी संकीर्णता से वह जितना अधिक मुक्त होता है, मज़दूरों के लिए अलग-अलग सुधारों को सुदृढ़ बनाना तथा उनका उपयोग करना उतना ही आसान होता है।

सुधारवादी समस्त देशों में हैं, इसलिए बुर्जुआ वर्ग सर्वत्र मज़दूरों को इस या उस तरह भ्रष्ट करने, उन्हें ऐसे सन्तुष्ट दास बनाने का प्रयास करते हैं,

जो दासता को मिटाने का विचार त्याग देते हैं। रूस में सुधारवादी विसर्जनवादी हैं, जो हमारे अतीत को ठुकराते हैं, ताकि मज़दूरों को नयी, खुली, क़ानूनी पार्टी के बारे में मीठी-मीठी लोरियाँ सुनाकर सुलाया जाये। हाल में 'सेवेरनाया प्रावदा'[1] ने सेण्ट पीटर्सबर्ग के विसर्जनवादियों को सुधारवाद के आरोप से अपना बचाव करने के लिए विवश किया था। उनकी दलीलों का ध्यानपूर्वक विश्लेषण किया जाना चाहिए, ताकि एक अतीव महत्त्वपूर्ण प्रश्न का स्पष्टीकरण किया जा सके।

हम सुधारवादी नहीं हैं – सेण्ट पीटर्सबर्ग के विसर्जनवादियों ने लिखा – क्योंकि हमने यह नहीं कहा कि सुधार ही सब कुछ हैं, अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं; हमने अन्तिम लक्ष्य की ओर बढ़ने की बात कही थी; हमने तो सुधारों के लिए संघर्ष के ज़रिये निर्धारित लक्ष्यों की पूर्ति की ओर बढ़ने की बात कही थी।

देखें कि यह बचाव तथ्यों से कैसे मेल खाता है।

पहला तथ्य। विसर्जनवादी सेदोव ने तमाम विसर्जनवादियों के बयानों का सार देते हुए लिखा था कि मार्क्सवादियों के "तीन स्तम्भों"[2] में से दो हमारे आन्दोलन के लिए उपयुक्त नहीं रह गये हैं। सेदोव ने आठ घण्टे का कार्य-दिवस रहने दिया, जिसे सिद्धान्तत: सुधार के रूप में हासिल किया जा सकता है। उन्होंने ठीक उन चीज़ों को, जो सुधारों के दायरे से बाहर जाती हैं, हटा दिया या पृष्ठभूमि में पहुँचा दिया। फलस्वरूप, सेदोव ठीक उस नीति का, जो इस फ़ार्मूला में अभिव्यक्त है कि अन्तिम लक्ष्य कुछ नहीं, अनुसरण करते हुए सीधे-सीधे अवसरवाद में जा धँसे। यह है सुधारवाद, जब "अन्तिम लक्ष्य" (जनवाद के सम्बन्ध तक में) को आन्दोलन से दूर धकेल दिया जाता है।

दूसरा तथ्य। विसर्जनवादियों के कुख्यात अगस्त (गत वर्ष के) सम्मेलन[3] ने भी असुधारवादी माँगों को नज़दीक लाने, हमारे आन्दोलन की स्वयं हृदय-स्थली तक लाने के बजाय उन्हें – किसी ख़ास मौक़े तक – दूर धकेल दिया।

तीसरा तथ्य। "पुराने"[4] को ठुकराकर तथा उसका तिरस्कार कर, उससे अपने को अलग कर विसर्जनवादी अपने को इस तरह सुधारवाद तक सीमित करते हैं। वर्तमान स्थिति में सुधारवाद तथा "पुराने" के परित्याग के बीच सम्बन्ध सुस्पष्ट है।

चौथा तथ्य। मज़दूरों का आर्थिक आन्दोलन ज्योंही सुधारवाद के बाहर जानेवाले नारों के साथ नाता जोड़ता है, वह विसर्जनवादियों के रोष तथा प्रहारों ("उत्तेजना," "हवा में तलवार घुमाने," आदि, आदि) को जन्म देता है।

परिणाम क्या निकलता है? शब्दों में तो विसर्जनवादी सिद्धान्त के रूप में सुधारवाद को ठुकरा देते हैं, परन्तु व्यवहार में वे आद्यन्त उसका अनुसरण करते हैं। एक ओर वे हमें यक़ीन दिलाते हैं कि उनके लिए सुधार क़तई सब कुछ नहीं है, परन्तु दूसरी ओर ज्योंही मार्क्सवादी व्यवहार में सुधारवाद के दायरे के बाहर बढ़ते हैं, विसर्जनवादी उन पर प्रहार करते हैं अथवा अपनी घृणा प्रकट करते हैं।

यह सब होते हुए भी मज़दूर आन्दोलन के तमाम क्षेत्रों में घटनाएँ हमें बताती हैं कि मार्क्सवादी सुधारों का व्यावहारिक उपयोग करने, उनके लिए संघर्ष करने में पीछे रहना तो दूर, बल्कि निश्चित रूप से आगे रहते हैं। मज़दूर श्रेणी[5] के स्तर पर दूमा के चुनावों को ले लें – दूमा के अन्दर तथा बाहर सदस्यों के भाषण, मज़दूर पत्र-पत्रिकाओं का संगठन, बीमा सुधार का उपयोग, सबसे बड़ी ट्रेड-यूनियन के रूप में धातुकर्मी यूनियन, आदि – आप सर्वत्र मार्क्सवादी मज़दूरों को आन्दोलन, संगठन के प्रत्यक्ष, फ़ौरी, "नित्यप्रति" कार्यों के क्षेत्र में, सुधारों के लिए संघर्ष तथा उनके उपयोग के क्षेत्र में विसर्जनवादियों से आगे देखते हैं।

मार्क्सवादी अथक रूप से कार्य कर रहे हैं, सुधार हासिल करने, उनका उपयोग करने का एक भी "मौक़ा" हाथ से नहीं जाने देते, प्रचार में, आन्दोलन में, व्यापक आर्थिक कार्रवाइयों, आदि में सुधारवाद के दायरे के बाहर जाने के प्रत्येक पग की निन्दा नहीं, उसका समर्थन तथा उसे अध्यवसायपूर्वक विकसित करते हैं। परन्तु मार्क्सवाद को तिलांजलि दे बैठे विसर्जनवादी मार्क्सवादी समष्टि के ठीक अस्तित्व पर प्रहार कर, मार्क्सवादी अनुशासन को नष्ट कर, सुधारवाद और उदारतावादी मज़दूर नीति का प्रचार कर मज़दूर आन्दोलन को केवल विसंगठित कर रहे हैं।

इसके अलावा यह तथ्य भी नज़र से ओझल नहीं किया जाना चाहिए कि रूस में सुधारवाद एक ख़ास रूप में, यानी वर्तमान रूस तथा वर्तमान यूरोप की राजनीतिक परिस्थिति की बुनियादी अवस्थाओं की सादृश्यता के रूप में व्यक्त होता है। उदारतावादी के दृष्टिकोण से यह सादृश्यता न्यायोचित है, इसलिए कि उदारतावादी यह विश्वास करता है और मानता है कि "खुदा का शुक्र है, हमारे पास संविधान है"। उदारतावादी जब इस विचार की पैरवी करता है कि 17 अक्टूबर के बाद सुधारवाद के दायरे के बाहर जनवाद का प्रत्येक पग पागलपन, जुर्म, पाप, आदि है, तो वह बुर्जुआ वर्ग के हित व्यक्त करता है।

परन्तु ये ही बुर्जुआ विचार हमारे विसर्जनवादियों द्वारा अमल में लाये जा रहे हैं, जो "खुली पार्टी" तथा "क़ानूनी पार्टी के लिए संघर्ष," आदि को रूस में निरन्तर और क्रमबद्ध ढंग से (काग़ज़ पर) "रोप रहे हैं"। दूसरे शब्दों में, उदारतावादियों की भाँति वे उस विशेष पथ **के बिना**, जिसके फलस्वरूप यूरोप में संविधानों का निर्माण तथा पीढ़ियों के दौरान, कभी-कभी शताब्दियों के दौरान तक उनका सुदृढ़ीकरण हुआ, रूस में यूरोपीय संविधान रोपने की वकालत करते हैं। विसर्जनवादी तथा उदारतावादी, जैसा कि कहा जाता है, खाल को पानी में डाले बिना धोना चाहते हैं।

यूरोप में सुधारवाद का वास्तविक अर्थ है मार्क्सवाद को तिलांजलि देना तथा उसके स्थान पर बुर्जुआ "सामाजिक नीति" रखना। रूस में विसर्जनवादियों के सुधारवाद का अर्थ मात्र यही नहीं है, अपितु मार्क्सवादी संगठन को नष्ट करना, मज़दूर वर्ग के जनवादी कार्यभारों का परित्याग करना, उनके स्थान पर उदारतावादी मज़दूर नीति रखना भी है।

**( 12 सितम्बर, 1913 को प्रकाशित, सम्पूर्ण रचनाएँ, खण्ड 24 )**

### टिप्पणियाँ

**1 'सेवेरनाया प्रावदा' ( 'उत्तरी सत्य' )** – 1 (14) अगस्त से 7 (20) सितम्बर, 1913 तक बोल्शेविक समाचारपत्र 'प्रावदा' के कई नामों में से एक।

**2 "तीन स्तम्भ"** - मज़दूर वर्ग की तीन मुख्य क्रान्तिकारी माँगों का सांकेतिक नाम : जनवादी जनतन्त्र, ज़मींदारी भूस्वामित्व का उन्मूलन व भूमि का किसानों को हस्तान्तरण; आठ घण्टे का कार्य-दिवस जारी करना।

**3 1912 का अगस्त सम्मेलन** - त्रॉत्सकीवादियों, विसर्जनवादियों और अन्य अवसरवादियों का यह सम्मेलन अगस्त, 1912 में वियेना में हुआ था और इसके लिए विसर्जनवादियों के पीटर्सबर्ग तथा मास्को "पहल ग्रुपों," बुन्द तथा ट्रांसकाकेशियाई मेंशेविकों ने भी अपने डेलीगेट भेजे थे। सम्मेलन में भाग लेनेवाले अधिकांश लोग मज़दूर आन्दोलन से कटे हुए प्रवासी ग्रुपों के प्रतिनिधि थे। सम्मेलन के संगठनकर्त्ताओं का लक्ष्य इन सभी तरह-तरह के तत्त्वों को एकजुट करके एक अवसरवादी पार्टी बनाना था, किन्तु 'व्पेयोंद' ग्रुप, लातवियाई सामाजिक-जनवादियों, आदि के सम्मेलन से वाक-आउट कर जाने के कारण यह लक्ष्य पूरा न हो सका। सम्मेलन में त्रॉत्सकी की पहल पर एक पार्टी विरोधी गुट बनाया गया, जिसे अगस्त गुट कहा जाता था।

सम्मेलन ने सामाजिक-जनवादी कार्यनीति के सभी प्रश्नों पर पार्टी विरोधी और विसर्जनवादी प्रस्ताव पास किये और पार्टी द्वारा गुप्त रूप से अपनी कार्रवाइयाँ जारी रखे जाने का विरोध किया। जातियों के आत्मनिर्णय के अधिकार की माँग के स्थान पर उसने सांस्कृतिक-राष्ट्रीय स्वायत्तता की माँग पर ज़ोर दिया, यद्यपि विभिन्न पार्टी कांग्रेसों के निर्णयों में उसे राष्ट्रवाद की अभिव्यक्ति मानकर निन्दनीय ठहराया जा चुका था।

**4** ज़ारशाही काल में वैध पत्र-पत्रिकाओं के लिए लिखे गये लेखों में लेनिन को प्राय: "ईसपी भाषा," यानी सांकेतिक, लाक्षणिक शब्द और मुहावरे इस्तेमाल करने पड़ते थे। उदाहरणार्थ, "रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी" के नाम के बदले वह "पुराना" शब्द प्रयोग करते थे और 'प्राव्दा' के पाठक समझ जाते थे कि आशय मज़दूर वर्ग की अरसे से अस्तित्वमान क्रान्तिकारी पार्टी से है, जिसे भंग करके उसके स्थान पर मेंशेविक-विसर्जनवादी "नयी", वैध, क्रान्तिकारी कार्यकलाप से कोई सम्बन्ध न रखनेवाली "व्यापक मज़दूर पार्टी" बनाना चाहते थे। आगे चलकर पाठक देखेंगे कि लेनिन ने रूसी सामाजिक-जनवादी मज़दूर पार्टी के लिए "मार्क्सवादी समष्टि" नाम भी इस्तेमाल किया है।

**5** राज्य दूमा के सदस्यों का निर्वाचन तथाकथित श्रेणी (क्यूरिया) प्रतिनिधित्व के सिद्धान्त के आधार पर होता था और श्रेणियों का निर्धारण सामाजिक संस्तर या सम्पत्ति के अनुसार किया जाता था। इस प्रकार मज़दूर मज़दूर श्रेणी के प्रतिनिधित्व की मात्रा के अनुसार चुनते थे, भूस्वामी (ज़मींदार) भूस्वामी श्रेणी के प्रतिनिधित्व की मात्रा के अनुसार, इत्यादि।


**तीन नयी महत्त्वपूर्ण बिगुल पुस्तिकाएँ**

| | | | |
|---|---|---|---|
| 1. | **राजधानी के मेहनतकश : एक अध्ययन** | अभिनव | 15.00 |
| 2. | **फ़ासीवाद क्या है और इससे कैसे लड़ें?** | अभिनव | 15.00 |
| 3. | **नेपाली क्रान्ति : इतिहास, वर्तमान परिस्थिति और आगे के रास्ते से जुड़ी कुछ बातें, कुछ विचार** | आलोक रंजन | 50.00 |

मँगाने के लिए सम्पर्क करें: **जनचेतना, डी-68, निरालानगर, लखनऊ-226020, फोन: 0522-2786782**

## 8 मार्च के मौक़े पर 'स्त्री मज़दूर संगठन' की शुरुआत

# गुलामी की बेड़ियाँ तोड़ दो! ज़माने की हवा बदल दो!!

अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस (8 मार्च) के मौक़े पर 7 मार्च को दिल्ली के राजा विहार मज़दूर बस्ती में हुए कार्यक्रम के साथ **स्त्री मज़दूर संगठन** की शुरुआत की गयी।

इस मौक़े पर **स्त्री मज़दूर संगठन** की कार्यकर्ताओं ने मज़दूर औरतों का आह्वान करते हुए कहा कि गुलामी की नींद सोने और क़िस्मत का रोना रोने का समय बीत चुका है। ज़ोरो-जुल्म के दम घोंटने वाले माहौल के ख़िलाफ़ एकजुट होकर आवाज़ उठाने का समय आ गया है। हमें मज़दूरों के हक़ की सभी लड़ाइयों में कन्धे से कन्धा मिलाकर शामिल होना होगा। साथ ही औरत मज़दूरों की कुछ अलग समस्याएँ और अलग माँगें भी हैं। इसलिए हमें अपना अलग संगठन भी बनाना होगा। इसीलिए स्त्री मज़दूर संगठन बनाकर एक नयी शुरुआत की जा रही है। औरतों को समाज और घर के भीतर भी हक़ और बराबरी की लड़ाई लड़नी है। मर्द मज़दूर साथियों से हमारा यही कहना है कि हमें गुलाम समझोगे तो तुम भी गुलाम बने रहोगे। मेहनतकश औरत-मर्द मिलकर लड़ेंगे, तभी वे अपनी लड़ाई जीत पायेंगे।

7 मार्च को राजा विहार में सांस्कृतिक कार्यक्रम और जनसभा की गयी। इस मौक़े पर ख़ास तौर पर तैयार किये गये नाटक 'कहानी एक मेहनतकश औरत की' का भी मंचन किया गया। क्रान्तिकारी गीत प्रस्तुत किये गये और औरतों की ज़िन्दगी तथा संघर्षों पर चित्रों की प्रदर्शनी लगायी गयी।

सभा में बड़ी संख्या में जुटी मेहनतकश औरतों को सम्बोधित करते हुए **कविता** ने कहा कि 8 मार्च को मनाया जाने वाला 'अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस' हर साल हमें हक़, इंसाफ़ और बराबरी की लड़ाई में फ़ौलादी इरादे के साथ शामिल होने की याद दिलाता है। पिछली सदी में दुनिया की औरतों ने संगठित होकर कई अहम हक़ हासिल किये। लेकिन गुज़रे बीस-पच्चीस वर्षों से ज़माने की हवा थोड़ी उल्टी चल रही है। लूट-खसोट का बोलबाला है। मज़दूर औरत-मर्द बारह-चौदह घण्टे हाड़ गलाकर भी दो जून की रोटी, तन ढाँकने को कपड़े, सिर पर छत, दवा-इलाज और बच्चे की पढ़ाई का जुगाड़ नहीं कर पाते। मेहनतकश औरतों की हालत तो नर्क से भी बदतर है। हमारी दिहाड़ी पुरुष मज़दूरों से भी कम होती है जबकि सबसे कठिन और महीन काम हमसे कराये जाते हैं। कई फैक्ट्रियों में हमारे लिए अलग शौचालय तक नहीं होते, पालनाघर तो दूर की बात है। दमघोंटू माहौल में दस-दस, बारह-बारह घण्टे खटने के बाद, हर समय काम से हटा दिये जाने का डर। मैनेजरों, सुपरवाइज़रों, फोरमैनों की गन्दी बातों, गन्दी निगाहों और छेड़छाड़ का भी सामना करना पड़ता है। ग़रीबी से घर में जो नर्क का माहौल बना होता है, उसे भी हम औरतें ही सबसे ज़्यादा भुगतती हैं।

**श्रुति** और **नंदिता** ने कहा कि आज केवल दिल्ली और नोएडा में लाखों औरतें कारख़ानों में खट रही हैं। अगर हम एका बनाकर मुठ्टी तान दें तो हमारी आवाज़ भला कौन दबा सकता है? सबसे पहले हमें सरकार को मजबूर कर देना होगा कि मज़दूरी की दर, काम के घण्टे, कारखानों में शौचालय, पालनाघर वगैरह के इन्तज़ाम और इलाज वगैरह से सम्बन्धित जो क़ानून पहले से मौजूद हैं, उन्हें वह सख्ती से लागू करवाये। फिर हमें समान पगार, ठेका प्रथा के ख़ात्मे, गर्भावस्था और बच्चे के लालन-पालन के लिए छुट्टी के इंतज़ाम, रहने के लिए घर, दवा-इलाज और बच्चों की शिक्षा के हक़ के लिए एक लम्बी, जुझारू लड़ाई लड़नी होगी।

**विमला** ने कहा कि मेहनतकश औरत-मर्द मिलकर लड़ेंगे, तभी वे अपनी लड़ाई जीत पायेंगे। स्त्री मज़दूर जब पुरुष मज़दूर के साथ मिलकर हक़, इंसाफ, आज़ादी और बराबरी की लड़ाई लड़ना शुरू करेंगी तो समाजवाद की हारी हुई जंग इस सदी में ज़रूर फिर से जीती जायेगी।

इस कार्यक्रम के पहले **स्त्री मज़दूर संगठन** की कार्यकर्ताओं ने राजा विहार और सूरज पार्क की बस्तियों में तथा कारखाने जाने वाली औरतों के बीच हज़ारों पर्चे बाँटे और घर-घर जाकर औरतों से सभा में आने के लिए बात की। सभा स्थल की सफाई, मंच लगाने, दरियाँ बिछाने जैसे काम संगठन की कार्यकर्ताओं को करते देख अनेक स्थानीय स्त्रियाँ भी उत्साहपूर्वक आकर उनके साथ शामिल हुईं। **स्मृति, शुभी, श्वेता, प्रियंका** आदि कार्यकर्ताओं ने भी नाटक, गीत आदि में हिस्सा लिया। 27 फरवरी से 23 मार्च तक दिल्ली में चलाये गये क्रान्तिकारी जागृति अभियान में भी स्त्री मज़दूर संगठन ने हिस्सा लिया और बड़े पैमाने पर मज़दूर स्त्रियों से सीधा सम्पर्क कर उन तक अपनी बात पहुँचायी।

**– बिगुल संवाददाता**

## अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के सौ वर्ष पूरे होने के अवसर पर

# स्त्री मुक्ति के संघर्ष को शहरी शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय कुलीनतावादी दायरों के बाहर लाना होगा

हर साल दुनिया भर में 8 मार्च का दिन अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस के रूप में मनाया जाता है। विश्व भर में स्त्रियाँ इस दिवस को अपनी मुक्ति को समर्पित दिवस के रूप में मनाती हैं। यह हमारी लड़ाई का प्रतीक दिवस है। इस बार भी पूरी दुनिया में आम मेहनतकश स्त्रियों ने अपने इस दिन को पूरे जज़्बे और जोशो-ख़रोश के साथ मनाया। इसका एक कारण यह भी था कि यह अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस का शताब्दी वर्ष था। शोषण, उत्पीड़न, दमन, पुरुष वर्चस्ववाद के तमाम रूपों से मुक्ति और जीवन के हर पहलू में पूर्ण समानता के लिए स्त्रियों के संघर्ष को सौ वर्ष पूरे हो चुके हैं।

इन पिछले सौ वर्षों में स्त्रियों ने अपने अधिकारों के लिए संघर्ष जारी रखा है और पूँजी की लूट और पितृसत्ता के उत्पीड़न के ख़िलाफ़ अपनी आवाज़ को बार-बार बुलन्द किया है। दुनिया के सभी देशों में स्त्रियों ने मेहनतकश वर्गों के आन्दोलनों, किसानों के संघर्ष और राष्ट्रीय मुक्ति युद्धों में पुरुषों के साथ कन्धे से कन्धा मिलाकर संघर्ष किया है और बेमिसाल कुर्बानियाँ दी हैं।

पूँजी की लूट और मुनाफ़े पर टिकी व्यवस्था के ख़िलाफ़ शुरू हुए स्त्रियों के संघर्ष की याद में अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस की शुरुआत हुई। लेकिन आज यह संघर्ष पूँजी के विरुद्ध संघर्ष के साथ महिलाओं के राजनीतिक अधिकारों के लिए संघर्ष, पितृसत्तात्मक उत्पीड़न के विरुद्ध संघर्ष और विभिन्न प्रकार की स्त्री विरोधी असमानताओं के विरुद्ध संघर्ष तक विस्तृत हो चुका है। पिछले 100 वर्षों में स्त्रियों ने अपने संघर्षों के दम पर तमाम सामाजिक, आर्थिक, राजनीतिक और क़ानूनी अधिकारों को प्राप्त किया है। अपने हक़ों को हासिल करने की हमारी यह लड़ाई आज भी जारी है। यह सच है कि हमने बहुत कुछ हासिल किया है लेकिन यह उससे भी बड़ा सच है कि अभी बहुत कुछ हासिल करना बाक़ी है।

यह विडम्बना ही है कि 8 मार्च की इस क्रान्तिकारी विरासत से आज हमारे देश की ज़्यादातर मेहनतकश स्त्रियाँ नावाकिफ़ हैं। जिस दिन की शुरुआत हमारी मेहनतकश बहनों के संघर्ष के तौर पर हुई थी, आज उसी के इतिहास को धूमिल करने और उसे महज़ एक त्योहार में बदल देने की कोशिशें की जा रही हैं। पूँजी की लूट और शोषण के ख़िलाफ़ शुरू हुए संघर्ष के इस प्रतीक दिन को पूँजीवादी व्यवस्था हाथोंहाथ ले रही है। इस दिन तमाम बड़ी-बड़ी कम्पनियों की महिला अधिकारियों को पुरस्कृत करने से लेकर कई कम्पनियों द्वारा विज्ञापनों के ज़रिये मध्यवर्गीय स्त्रियों को लुभाने के नये तरीक़े भी निकाले जा रहे हैं। अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस की क्रान्तिकारी धरोहर के बारे में विभ्रम पैदा करने के नित नये हथकण्डे अपनाये जा रहे हैं। इस विभ्रम का जवाब केवल क्रान्तिकारी प्रचार द्वारा ही दिया जा सकता है। इसके अलावा बहुतेरे स्त्री संगठन इस मौक़े पर कुछेक रस्मी कवायदें करके अपना कर्तव्य निर्वाह करते हैं। इनके लिए स्त्री दिवस को मनाना एक जश्न मनाने के समान होता है। अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस को बस मना लिया जाना काफ़ी नहीं है। आज स्त्री मुक्ति के संघर्षों को ऐसे अनुष्ठानवादी और कवायदी गतिविधि के दायरे से बाहर निकालना ज़रूरी है।

अपनी मुक्ति के लिए संघर्ष के सौ वर्षों का सफ़र तय करने के बाद भी आज तक स्त्रियाँ पूँजी की दासता का शिकार हैं; पूँजीवादी व्यवस्था में हर चीज़ की तरह उनका भी वस्तुकरण हो रहा है; सस्ता होने के कारण स्त्रियों के श्रम को तमाम कम्पनियाँ और कॉरपोरेशन बुरी तरह निचोड़ रहे हैं; पूँजी की गुलामी का शिकार स्त्री और पुरुष दोनों ही हैं लेकिन स्त्रियों को पूँजी की गुलामी के साथ-साथ पितृसत्तात्मक उत्पीड़न का शिकार भी होना पड़ता है। सड़क से लेकर घर तक उसे अपमान और दमन-उत्पीड़न का सामना करना पड़ता है। स्त्रियों की एक विशाल आबादी तमाम पूँजीवादी आधुनिकता आ जाने के बावजूद चूल्हे-चौखट में ही क़ैद हैं। जो स्त्रियाँ बाहर निकल रही हैं और काम कर रही हैं, उन्हें भी पूँजी के शोषण के अतिरिक्त असुरक्षा और अपमान के माहौल में जीना पड़ता है।

ऐसे में यह सोचने का मुद्दा है कि स्त्रियों की मुक्ति का रास्ता आख़िर क्या होगा? जैसा कि हमने पहले भी ज़िक्र किया है, स्त्रियों की मुक्ति का संघर्ष मेहनतकश स्त्रियों के संघर्ष के साथ शुरू हुआ था। आज भी पूँजी के शोषण और पितृसत्ता के दमन और उत्पीड़न के विभिन्न रूपों का शिकार सबसे अधिक मज़दूर वर्ग और निम्न मध्यवर्ग की स्त्रियों को ही होना पड़ता है। ज़ाहिर है कि जो इस लूट और उत्पीड़न का सबसे बुरी तरह शिकार हैं, वही इसके ख़िलाफ़ सबसे कारगर तरीक़े से लड़ेंगी। इतिहास बताता है कि उन देशों में स्त्रियों ने अपने संघर्ष के नये मुकाम हासिल किये जहाँ पर आम मेहनतकश जनता की सत्ता कायम हुई। 1917 में रूस में अक्टूबर क्रान्ति के बाद मानव इतिहास में पहली बार कोई ऐसी राज्यसत्ता अस्तित्व में आयी, जिसने औरतों को हर मायने में समान अधिकार दिये। वेश्यावृत्ति का ख़ात्मा, समान काम के लिए समान मेहनताना, समान मताधिकार, समान सामाजिक-राजनीतिक अधिकार, काम करने की सुविधाजनक और सम्मानजनक स्थितियाँ स्त्रियों की आर्थिक गतिविधियों में समान भागीदारी और घर के दायरे से बाहर निकलना, विवाह और तलाक के सम्बन्ध में बराबर अधिकार, शराबख़ोरी का ख़ात्मा कुछ मील के पत्थर थे। पिछड़े हुए रूसी समाज में क्रान्ति के बाद के चार दशकों में उत्पादन, सामाजिक-राजनीतिक कार्रवाइयों, सामरिक मोर्चे और बौद्धिक गतिविधियों के दायरे में जितनी तेज़ी से औरतों की भागीदारी बढ़ी, वह रफ़्तार जनवादी क्रान्तियों के बाद यूरोप-अमेरिका के देशों में पूरी दो शताब्दियों के दौरान कभी नहीं रही थीं। चीन में 1949 में क्रान्ति के बाद भी स्त्रियों की मुक्ति के नये क्षितिज सामने आये। राजनीतिक, आर्थिक, सामाजिक और सांस्कृतिक जीवन में उनकी हिस्सेदारी पुरुषों से पीछे नहीं रही और एक ऐसे देश में यह बहुत बड़ी बात थी, जहाँ पितृसत्तात्मक गुलामी मध्ययुगीन बर्बरता के युग में थी। अभी भी स्त्रियों की असमानता के सूक्ष्म और बारीक रूप मौजूद थे लेकिन उनके ख़िलाफ़ संघर्ष के पहले ही इन देशों में मज़दूर सत्ताओं का पतन हो गया। इन देशों में मेहनतकशों की सत्ताओं के पतन के साथ ही तमाम उपलब्धियाँ नष्ट हो गयीं। इसलिए ख़ुद इतिहास इस बात की ताईद करता है कि स्त्री मुक्ति का प्रोजेक्ट पूरा तभी हो सकता है जब यह मेहनतकश वर्गों की मुक्ति के संघर्ष यानी पूँजीवाद-विरोधी संघर्ष से जुड़े।

साथ ही, स्त्री मुक्ति के संघर्ष को हमें यदि किसी अर्थपूर्ण दिशा में आगे बढ़ाना है तो इसे शहरी शिक्षित उच्च मध्यवर्गीय कुलीनतावादी दायरों के बाहर लाना होगा। हमें स्त्री मुक्ति के नाम पर स्त्री मुक्ति आन्दोलन को महज़ स्त्री की पहचान की लड़ाई तक सीमित कर देने वाली एनजीओ संगठनों की घातक राजनीति के ख़िलाफ़ भी संघर्ष करना होगा। हमें स्त्री मुक्ति आन्दोलन को तमाम सुधारवादी माँगों की चौहद्दी से भी बाहर लाना होगा।

इस सन्दर्भ में हाल ही में राज्य सभा में पारित हुए महिला आरक्षण बिल पर छोटी सी चर्चा अनिवार्य है। हमारा स्पष्ट मानना है कि संसद-विधानसभाओं में 33 प्रतिशत सीटें आरक्षित कर देने से आम मेहनतकश स्त्रियों के जीवन पर कोई असर नहीं पड़ेगा। हम समझते हैं कि यह नारी आन्दोलन को भी संसदीय राजनीति के मलकुण्ड में समेट देने की एक साजिश के अलावा और कुछ नहीं है। जो संसद और विधानसभाएँ चोरों, लुटेरों, बलात्कारियों और इस पूँजीवादी व्यवस्था के चाकरों का अड्डा मात्र है, उसमें अगर कुछ और महिलाओं को पूँजीपति वर्ग का प्रतिनिधि बनने का मौक़ा मिल भी जाता है तो इससे देश की बहुसंख्यक स्त्री आबादी की जीवन स्थितियों में कोई बदलाव नहीं आयेगा। चौंकाने वाली बात तो यह है कि तमाम तथाकथित वामपन्थियों के साथ-साथ कई नारीवादी संगठन भी इस बिल को लेकर काफ़ी आशावान है और हर्षातिरेक का अनुभव कर रहे हैं।

साफ़ है कि जिस देश की ज़्यादातर महिलाएँ मेहनत-मज़दूरी करके, किसी तरह अपने परिवार का पेट भरने के लिए दिन-रात खटती रहती है, जो घर के भीतर, चूल्हे-चौखट में ही अपनी तमाम उम्र बिता देने को अभिशप्त हैं, जो आये दिन अनगिनत किस्म के अपराधों और बर्बरताओं का शिकार होती हैं, उनकी गुलामी और दोयम दर्जे की स्थिति को कोई क़ानून या अधिनियम नहीं ख़त्म कर सकता। वास्तव में स्त्रियों की मुक्ति पूँजीवादी व्यवस्था के भीतर सम्भव है ही नहीं। स्त्रियों की मुक्ति सिर्फ़ उसी समाज में सम्भव होगी जो पूरी मानवता को उसकी पूँजी की बेड़ियों से मुक्त करेगा। इसलिए आज स्त्री मुक्ति के क्रान्तिकारी संघर्ष को सामाजिक परिवर्तन के संघर्ष के साथ जुड़ना ही होगा। दूसरी ओर, यह भी सही है कि सामाजिक परिवर्तन की कोई भी लड़ाई आधी आबादी की भागीदारी के बिना नहीं जीती जा सकती।

**– शिवानी**

# "ऐसा होता है सच्चाई का असर"

## मक्सिम गोर्की के उपन्यास 'माँ' का अंश

एक रात खाना खाने के बाद पावेल ने खिड़की पर परदा डाला, दीवार पर टीन का लैम्प टाँगा और कोने में बैठकर पढ़ने लगा। माँ बर्तन धोकर रसोई से निकली और धीरे-धीरे उसके पास गयी। पावेल ने सिर उठाकर प्रश्नसूचक दृष्टि से माँ की ओर देखा।

"कुछ नहीं, पावेल, मैं तो ऐसे ही आ गयी थी," वह झटपट बोली और जल्दी से फिर रसोई में चली गयी। घबराहट के कारण उसकी भवें फड़क रही थीं। पर थोड़ी देर तक अपने विचारों से संघर्ष करने के बाद वह हाथ धोकर फिर पावेल के पास गयी।

"मैं तुमसे पूछना चाहती थी कि तुम हर वक़्त यह क्या पढ़ते रहते हो?" उसने धीरे से पूछा।

पावेल ने किताब बन्द कर दी।

"अम्मा, बैठ जाओ।"

माँ जल्दी से सीधी तनकर बैठ गयी; वह कोई बहुत ही महत्त्वपूर्ण बात सुनने को तैयार थी।

पावेल माँ की तरफ़ देखे बिना बहुत धीमे और न जाने क्यों कठोर स्वर में बोला :

"मैं ग़ैरकक़ानूनी किताबें पढ़ता हूँ। ये ग़ैरक़ानूनी इसलिए हैं कि इनमें मज़दूरों के बारे में सच्ची बातें लिखी हैं। ये चोरी से छापी जाती हैं और अगर मेरे पास पकड़ी गयीं तो मुझे जेल में बन्द कर दिया जायेगा... जेल में इसलिए कि मैं सच्चाई मालूम करना चाहता हूँ, समझीं?"

सहसा माँ को घुटन महसूस होने लगी। बहुत ग़ौर से उसने अपने बेटे को देखा और उसे वह पराया-सा लगा। उसकी आवाज़ भी पहले जैसी नहीं थी – अब वह ज़्यादा गहरी, ज़्यादा गम्भीर थी, उसमें ज़्यादा गूँज थी। वह अपनी बारीक़ मूँछों के नरम बालों को ऐंठने लगा और आँखें झुकाकर अजीब ढंग से कोने की तरफ़ ताकने लगा। माँ उसके बारे में चिन्तित हो उठी, और उसे उस पर तरस भी आ रहा था।

"पावेल, किसलिए तुम ऐसा करते हो?" माँ ने पूछा।

उसने सिर उठाकर माँ की तरफ़ देखा।

"क्योंकि मैं सच्चाई जानना चाहता हूँ," उसने बड़े शान्त भाव से उत्तर दिया।

उसका स्वर कोमल पर दृढ़ था और उसकी आँखो में एक चमक थी। माँ ने समझ लिया कि उसके बेटे ने जन्म भर के लिए अपने आपको किसी गुप्त और भयानक काम के लिए अर्पित कर दिया है। वह परिस्थितियों को अनिवार्य मानकर स्वीकार कर लेने और किसी आपत्ति के बिना सब कुछ सह लेने की आदी हो चुकी थी। इसलिए वह धीरे-धीरे सिसकने लगी, पीड़ा और व्यथा के बोझ से उसका हृदय इतनी बुरी तरह दबा हुआ था कि वह कुछ भी कह न पायी।

"रोओ नहीं, माँ," पावेल ने कोमल और प्यार-भरे स्वर में कहा और माँ को ऐसा लगा मानो वह उससे विदा ले रहा हो। "ज़रा सोचो तो, कैसा जीवन है हम लोगों का! तुम चालीस बरस की हुईं, कुछ भी सुख देखा है तुमने अपने जीवन में? पिता हमेशा तुम्हें मारते थे ... अब मैं इस बात को समझने लगा हूँ कि वह अपने तमाम दु:ख-दर्दों, अपने जीवन के सभी कटु अनुभवों का बदला तुमसे लेते थे। कोई चीज़ लगातार उनके सीने पर बोझ की तरह रखी रहती थी पर वह नहीं जानते थे कि वह चीज़ क्या थी। तीस बरस तक उन्होंने यहाँ खून-पसीना एक किया... जब वह यहाँ काम करने लगे थे, तब इस फ़ैक्टरी की सिर्फ़ दो इमारतें थीं और अब सात हैं।"

माँ बड़ी उत्सुकता के साथ किन्तु धड़कते दिल से उसकी बातें सुन रही थी। उसके बेटे की आँखों में बड़ी प्यारी चमक थी। मेज के कगार से अपना सीना सटाकर वह आगे झुका और माँ के आँसुओं से भीगे हुए चेहरे के पास होकर उसने सच्चाई के बारे में पहला भाषण दिया जिसका उसे अभी ज्ञान हुआ था। अपनी युवावस्था के पूरे जोश के साथ, उस विद्यार्थी के पूरे उत्साह के साथ जो अपने ज्ञान पर गर्व करता है, उसमें पूरी आस्था रखता है, वह उन चीज़ों की चर्चा कर रहा था जो उसके दिमाग़ में साफ़ थीं। वह अपनी माँ को समझाने के उद्देश्य से इतना नहीं, जितना अपने आपको परखने के लिए बोल रहा था। बीच में शब्दों के अभाव के कारण वह रुका और तब उस व्यथित चेहरे की ओर उसका ध्यान गया, जिस पर आँसुओं से धुँधलायी हुई दयालु आँखें धीमे-धीमे चमक रही थीं। वे भय और विस्मय के साथ उसे घूर रही थीं। उसे अपनी माँ पर तरस आया। वह फिर से बोलने लगा, मगर अब माँ और उसके जीवन के बारे में।

**"मैं पहले ख़ुद पढ़ूँगा और फिर दूसरों को पढ़ाऊँगा। हम मज़दूरों को पढ़ना चाहिए। हमें इस बात का पता लगाना चाहिए और इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमारी ज़िन्दगी में इतनी मुश्किलें क्यों हैं।"**

"तुम्हें कौन-सा सुख मिला है?" उसने पूछा। "कौन-सी मधुर स्मृतियाँ हैं तुम्हारे जीवन में?"

माँ ने सुना और बड़ी वेदना से अपना सिर हिला दिया। उसे एक विचित्र-सी नयी अनुभूति हो रही थी जिसमें हर्ष भी था और व्यथा भी, जो उसके टीसते हृदय को सहला रही थी। अपने जीवन के बारे में ऐसी बातें उसने पहली बार सुनी थीं और इन शब्दों ने एक बार फिर वही अस्पष्ट विचार जागृत कर दिये थे जिन्हें वह बहुत समय पहले भूल चुकी थी, इन बातों ने जीवन के प्रति असन्तोष की मरती हुई भावना में दुबारा जान डाल दी थी – उसकी युवावस्था के भूले हुए विचारों तथा भावनाओं को फिर सजीव कर दिया था। अपनी युवावस्था में उसने अपनी सहेलियों के साथ जीवन के बारे में बातें की थीं, उसने हर चीज़ के बारे में विस्तार के साथ बातें की थीं, पर उसकी सब सहेलियाँ – और वह ख़ुद भी – केवल दुखों का रोना रोकर ही रह जाती थीं। कभी किसी ने यह स्पष्ट नहीं किया था कि उनके जीवन की कठिनाइयों का कारण क्या है। परन्तु अब उसका बेटा उसके सामने बैठा था और उसकी आँखें, उसका चेहरा और उसके शब्द जो भी व्यक्त कर रहे थे वह सभी कुछ माँ के हृदय को छू रहा था; उसका हृदय अपने इस बेटे के लिए गर्व से भर उठा, जो अपनी माँ के जीवन को इतनी अच्छी तरह समझता था, जो उसके दु:ख-दर्द का ज़िक्र कर रहा था, उस पर तरस खा रहा था।

माँओं पर कौन तरस खाता है।

वह इस बात को जानती थी। उसका बेटा औरतों के जीवन के बारे में जो कुछ कह रहा था एक चिर-परिचित कटु सत्य था और उसकी बातों ने उन मिश्रित भावनाओं को जन्म दिया जिनकी असाधारण कोमलता ने माँ के हृदय को द्रवित कर दिया।

"तो तुम करना क्या चाहते हो?" माँ ने उसकी बात काटकर पूछा।

"पहले ख़ुद पढ़ूँगा और फिर दूसरों को पढ़ाऊँगा। हम मज़दूरों को पढ़ना चाहिए। हमें इस बात का पता लगाना चाहिए और इसे अच्छी तरह समझ लेना चाहिए कि हमारी ज़िन्दगी में इतनी मुश्किलें क्यों हैं।"

माँ को यह देखकर ख़ुशी हुई कि उसके बेटे की हमेशा गम्भीर और कठोर रहने वाली नीली आँखों में इस समय कोमलता और मृदुलता चमक रही थी। यद्यपि माँ के गालों की झुर्रियों में अभी तक आँसुओं की बूँदें काँप रही थीं, पर उसके होंठों पर एक शान्त मुस्कराहट दौड़ गयी। उसके हृदय में एक द्वन्द्व मचा हुआ था। एक तरफ़ तो उसे अपने बेटे पर गर्व था कि वह जीवन की कटुताओं को इतनी अच्छी तरह समझता है और दूसरी तरफ़ उसे इस बात की चेतना भी थी कि अभी वह बिल्कुल जवान है, वह जैसी बातें कर रहा है वैसी कोई दूसरा नहीं करता और उसने केवल अपने बलबूते पर ही एक ऐसे जीवन के विरुद्ध संघर्ष करने का बीड़ा उठाया है जिसे बाक़ी सभी लोग, जिनमें वह ख़ुद भी शामिल थी, अनिवार्य मानकर स्वीकार करते हैं। उसकी इच्छा हुई कि अपने बेटे से कहे, "मगर, मेरे लाल, तू अकेला क्या कर लेगा?"

पर वह ऐसा करने से झिझक गयी, क्योंकि मुग्ध होकर वह बेटे को जी भर देख लेना चाहती थी। उस बेटे को, जो सहसा ऐसे समझदार पर कुछ-कुछ अजनबी व्यक्ति के रूप में उसके सामने प्रकट हुआ था।

पावेल ने अपनी माँ के होंठों पर मुस्कराहट, उसके चेहरे पर चिन्तन का भाव, उसकी आँखों में प्यार देखा और उसे ऐसा लगा कि वह माँ को अपने सत्य का भान कराने में सफल हो गया है। अपनी वाणी की शक्ति में युवोचित गर्व ने उसका आत्म-विश्वास बढ़ा दिया। वह बड़े जोश से बोल रहा था, कभी मुस्कराता, कभी उसकी त्योरियाँ चढ़ जातीं और कभी उसका स्वर घृणा से भर उठता; उसके शब्दों में गूँजती कठोरता को सुनकर माँ को डर लगने लगता और वह सिर झुलाते हुए धीरे से पूछती

"पावेल, क्या ऐसा ही है?"

और वह दृढ़तापूर्वक उत्तर देता, "हाँ।" और वह उन लोगों के बारे में बताता जो जनता की भलाई के लिए उसमें सच्चाई के बीज बोते थे तथा इसी कारण जीवन के शत्रु हिंसक पशुओं की तरह उनके पीछे पड़ जाते थे, उन्हें जेलों में ठूँस देते थे, निर्वासित कर देते थे...

"मैं ऐसे लोगों को जानता हूँ!" उसने बड़े जोश के साथ कहा। "वे धरती के सच्चे लाल हैं!"

ऐसे लोगों के विचार से ही वह काँप गयी और एक बार फिर उसकी इच्छा अपने बेटे से पूछने की हुई कि क्या ऐसा ही है, पर उसे साहस नहीं हुआ। दम साधकर वह उससे उन लोगों के बारे में क़िस्से सुनती रही जिनकी बातें तो वह नहीं समझती थी पर जिन्होंने उसके बेटे को इतनी ख़तरनाक बातें कहना और सोचना सिखा दिया था। आख़िरकार उसने अपने बेटे से कहा :

"सबेरा होने को आया। अब तुम थोड़ी देर सो लो।"

"हाँ, अभी," उसने कहा और फिर उसकी तरफ़ झुककर बोला, "मेरी बातें समझ गयीं न?"

"हाँ," उसने आह भरकर उत्तर दिया। एक बार फिर आँसुओं की धारा बह चली और सहसा वह ज़ोर से कह उठी, "तबाह हो जाओगे तुम!"

पावेल उठा, उसने कमरे का चक्कर लगाया और फिर बोला :

"अच्छा, तो अब तुम जान गयीं कि मैं क्या करता हूँ और कहाँ जाता हूँ," पावेल ने कहा, "मैंने तुम्हें सब कुछ बता दिया है। और अम्मा, अगर तुम मुझे प्यार करती हो, तो तुमसे प्रार्थना करता हूँ कि मेरी राह में बाधा न बनना।"

"ओह, मेरे लाल!" माँ ने रोते हुए कहा। "शायद... शायद अगर तुम मुझसे न बताते तो अच्छा होता।"

पावेल ने माँ का हाथ अपने हाथों में लेकर दबाया।

उसने जितने प्यार के साथ "अम्मा" कहा था और जिस नये तथा विचित्र ढंग से उसने आज पहली बार उसका हाथ दबाया था, उससे माँ का हृदय भर आया।

"मैं बाधा नहीं बनूँगी," उसने भाव-विह्वल होकर कहा। "मगर अपने को बचाये रखना, बचाये रखना!"

वह नहीं जानती थी कि उसे किस चीज़ से अपने को बचाना चाहिए, इसलिए उसने दु:खी होते हुए इतना जोड़ दिया :

"तुम दिन-ब-दिन दुबले होते जा रहे हो..."

वह अपने बेटे के लम्बे-चौड़े बलिष्ठ शरीर पर एक प्यार-भरी नज़र दौड़ाते हुए जल्दी-जल्दी और धीमी आवाज़ में बोली :

"तुम जो ठीक समझो करो – मैं तुम्हारी राह में बाधा नहीं बनूँगी। बस, इतनी ही प्रार्थना करती हूँ – इस बात का ध्यान रखना कि किससे बात कर रहे हो। तुम्हें लोगों के मामले में सतर्क रहना चाहिए। लोग एक-दूसरे से नफ़रत करते हैं। वे लालची हैं, एक-दूसरे से जलते हैं, जान-बूझकर दूसरों को नुक़सान पहुँचाना चाहते हैं। जैसे ही तुम उन्हें उनकी वास्तविकता बताओगे, भला-बुरा कहोगे, वे जल-भुन जायेंगे और तुम्हें मिटा देंगे।"

पावेल दरवाज़े पर खड़ा हुआ उसके वे व्यथा-भरे शब्द सुनता रहा और जब वह अपनी बात ख़त्म कर चुकी तो मुस्कराकर बोला :

"तुम ठीक कहती हो – लोग बुरे हैं। लेकिन जैसे ही मुझे यह मालूम हुआ कि इस दुनिया में सच्चाई नाम की भी एक चीज़ है तो लोग भले मालूम होने लगे।"

वह फिर मुस्कराया और कहता गया :

"कारण मैं नहीं जानता, पर बचपन में मैं सबसे डरता था। ज्यों-ज्यों बड़ा होता गया, सबसे नफ़रत करने लगा, कुछ से उनकी नीचता के लिए और कुछ से बस यों ही! लेकिन अब हर चीज़ बदली हुई मालूम होती है। शायद मुझे लोगों पर तरस आता है? समझ नहीं पाता, पर जब मुझे इस बात का आभास हुआ कि अपनी पशुता के लिए हमेशा ख़ुद लोग ही दोषी नहीं होते थे तो मेरा हृदय कोमल हो उठा..."

वह बोलते-बोलते रुक गया मानो अपनी अन्तरात्मा की आवाज़ सुन रहा हो और फिर उसने बड़े शान्त स्वर में विचारशीलता से कहा :

"ऐसा होता है सच्चाई का असर।"

"हे भगवान! ख़तरनाक परिवर्तन हो गया है तुममें," माँ ने कनखियों से उसे देखते हुए आह भरकर कहा।

जब वह सो गया, तो माँ अपने बिस्तर से उठकर दबे पाँव उसके पास गयी। पावेल सीधा लेटा हुआ था और सफ़ेद तकिये की पृष्ठभूमि पर उसके साँवले चेहरे की गम्भीर तथा कठोर रूप-रेखा स्पष्ट उभरी हुई थी। नंगे पैर और रात की पोशाक पहने हुए माँ सीने पर दोनों हाथ रखे उसके पास खड़ी थी – मूक होंठ हिल रहे थे और उसके गालों पर आँसू की बड़ी-बड़ी बूँदें ढलक रही थीं।

फिर पहले की तरह ही उनका जीवन बीतने लगा, दोनों चुप-चुप रहते, एक-दूसरे से दूर, फिर भी बहुत निकट।

•

पंजीयन संख्या 71980/99 | डाक पंजीयन संख्या SSP/LW-NP/399/2009-11 | प्रेषक डाकघर - महानगर | प्रेषण तिथि - माह की 13, 14, 15 तारीख़

## 'क्रान्तिकारी जागृति अभियान' का आह्वान

# भगतसिंह की बात सुनो! नयी क्रान्ति की राह चुनो!!

चन्द्रशेखर आज़ाद के शहादत दिवस (27 फरवरी) से भगतसिंह के शहादत दिवस (23 मार्च) तक उत्तर-पश्चिम दिल्ली के मज़दूर इलाकों में **नौजवान भारत सभा, बिगुल मज़दूर दस्ता, स्त्री मज़दूर संगठन** और **जागरूक नागरिक मंच** की ओर से 'क्रान्तिकारी जागृति अभियान' चलाया गया। अभियान टोली ने इस एक महीने के दौरान हज़ारों मज़दूरों से सीधे सम्पर्क किया और उनका आह्वान करते हुए कहा कि चन्द्रशेखर आज़ाद, भगतसिंह, सुखदेव और राजगुरू की शहादतों को याद करने का सबसे अच्छा रास्ता यह है कि हम मेहनतकश इन महान इन्क़लाबियों के जीवन और विचारों से प्रेरणा लेकर पस्तहिम्मती के अँधेरे से बाहर आयें और पूँजी की गुलामी की बेड़ियों को तोड़ने के लिए कमर कसकर उठ खड़े हों।

अभियान के दौरान हुई दर्जनों सभाओं और कार्यक्रमों तथा बाँटे गये पर्चों में अभियान टोली मज़दूरों के बीच उस सच्चाई को लेकर गयी जो हुकूमत करने वालों के टुकड़ों पर पलने वाले बुद्धिजीवी कभी नहीं बताते। भगतसिंह और उनके साथी ऐसी आज़ादी की बात करते थे जिसमें हुकूमत की बागडोर वास्तव में मज़दूरों के हाथ में हो। वे अंग्रेज़ों की गुलामी के साथ ही पूँजीवाद के ख़ात्मे की बात कर रहे थे। वे साफ कहते थे कि हमारे लिए आज़ादी का मतलब यह नहीं है कि गोरे अंग्रेज़ों की काले अंग्रेज़ गद्दी पर बैठ जायें, हमारे लिए आज़ादी का मतलब है 98 प्रतिशत आम जनता का शासन। वे एक ऐसी समाजवादी व्यवस्था क़ायम करना चाहते थे जिसमें उत्पादन मुनाफ़े के लिए नहीं, बल्कि समाज की ज़रूरत के हिसाब से हो, जिसमें सबको रोज़गार मिले, सभी बच्चों को एक समान मुफ़्त शिक्षा और मुफ़्त दवा-इलाज मिले।

यह अभियान मुख्य रूप से उत्तर-पश्चिम दिल्ली के समयपुर, बादली, शाहाबाद डेयरी, नरेला और रोहिणी के विभिन्न इलाक़ों में तथा दिल्ली की सीमा से लगे हरियाणा के कुण्डली औद्योगिक क्षेत्र और उससे लगी मज़दूर बस्तियों में चलाया गया। अभियान का मुख्य ज़ोर क्रान्तिकारियों के विचारों को मज़दूरों के बीच लेकर जाने और एक नयी क्रान्तिकारी शुरुआत के लिए मज़दूरों को जगाने पर था।

अभियान की शुरुआत बादली के राजा विहार इलाक़े की मज़दूर बस्ती में 27 फ़रवरी को चन्द्रशेखर आज़ाद की याद में हुए कार्यक्रम से हुई। बस्ती की मुख्य सड़क के किनारे मंच लगाकर हुए इस कार्यक्रम में सैकड़ों लोगों ने भाग लिया। क़रीब तीन घण्टे तक चले कार्यक्रम में दो छोटे नाटक और क्रान्तिकारी गीत पेश किये गये और कार्यकर्ताओं ने विस्तार से मज़दूरों की ज़िन्दगी की चर्चा करते हुए अपने हक़ों के लिए संघर्ष के वास्ते एकजुट होने का आह्वान किया। उन्होंने कहा कि आज बारह-चौदह घण्टे की दिहाड़ी खटने के बाद भी मज़दूरों की बुनियादी ज़रूरतें पूरी नहीं होतीं। सरकार के बनाये हुए श्रम क़ानूनों के हिसाब से हमें जो मिलना चाहिए, वह भी नहीं मिलता। यूनियनों के नेता मालिकों के दलाल हो गये हैं। तिरंगे और भगवा से लेकर लाल, हरे, नीले, पीले झण्डे वाली सभी चुनावी पार्टियाँ पूँजीपतियों की टुकड़खोर हैं। इस इस आज़ादी और लोकतंत्र का करोड़ों मेहनतकशों के लिए क्या मतलब रह गया है? देश की सारी तरक्की मेहनतकशों की बदौलत है, पर उन्हें इस तरक्की की जूठन भी नहीं मिलती। उनकी ज़िन्दगी में बस गुलामी की बेबसी है, नरक का अँधेरा है।

इससे पहले 22 फ़रवरी से ही कार्यक्रम की तैयारी के लिए अभियान टोली ने सूरज पार्क और राजा विहार की बस्तियों में प्रचार शुरू कर दिया था। मज़दूरों के काम पर निकलने से पहले सुबह 7 से 9 बजे के बीच गलियों में नारे लगाते हुए और छोटी-छोटी नुक्कड़ सभाएँ करते हुए मज़दूरों और उनके परिवारों से सम्पर्क किया जाता था तथा बड़े पैमाने पर पर्चे बाँटे जाते थे। दिन में कारख़ाना गेटों के आसपास सभाएँ की जातीं और फिर शाम को काम से लौटते हुए मज़दूरों के बीच बात रखने तथा पर्चे बाँटने का कार्यक्रम चलता। संजय कालोनी में भी शाम से लेकर रात तक प्रचार अभियान चला। इस तरह पूरे इलाक़े की अधिकतम मेहनतकश आबादी तक पहुँचने का प्रयास किया गया। पूरे इलाके में बड़ी संख्या में हाथ से लिखे पोस्टर भी लगाये गये।

अभियान के दौरान ही अन्तरराष्ट्रीय स्त्री दिवस (8 मार्च) के मौक़े पर 7 मार्च को राजा विहार में सांस्कृतिक कार्यक्रम और जनसभा की गयी। (विस्तृत रिपोर्ट पेज 10 पर देखें)

14 मार्च को शाहाबाद डेयरी इलाक़े के मुख्य बाज़ार में एक बड़ी जनसभा की गयी। इससे पहले भी पूरे इलाक़े में कई दिनों तक सुबह से शाम तक सघन प्रचार और जनसम्पर्क अभियान चलाया गया। शाम को हुई सभा में वक्ताओं ने कहा कि भगतसिंह ने चेतावनी दी थी कि कांग्रेसी अंग्रेज़ों को हटाकर पूँजीपतियों के हाथों में राज सौंपना चाहते हैं और ये देशी लुटेरे फिर से विदेशी लुटेरों से समझौता कर लेंगे और देश लूटने के लिए उन्हें फिर से न्यौता दे देंगे। उनकी यह भविष्यवाणी हूबहू सही निकली। देश के मेहनतकश आम लोग तमाम तरक्की के बावजूद नरक की ज़िन्दगी बिता रहे हैं। बड़ी मेहनत से लड़कर मज़दूरों ने जो हक़ हासिल किये थे, वे भी ज़्यादातर छिन गये हैं। दुनियाभर के थैलीशाह एकजुट हैं लेकिन मज़दूर बिखरे हुए हैं और निराश हैं। ज़माने की हवा अभी उल्टी चल रही है। कमेरों पर लुटेरे हावी हैं मगर ये हालात हमेशा ऐसे ही नहीं रहेंगे। नब्बे प्रतिशत लोगों पर दस प्रतिशत मुनाफ़ाख़ोर कब तक सवारी गाँठेंगे! मज़दूरों को आपस के बँटवारों को भुलाकर उठ खड़ा होना होगा और अपनी क़िस्मत ख़ुद बदलनी होगी।

मज़दूरों के जोश का यह आलम था कि इस सभा के बीच में ही बिजली कट जाने से पूरे इलाके में अँधेरा हो गया लेकिन बड़ी संख्या में मज़दूर और महिलाएँ सभास्थल पर जमे रहे। बिजली आने तक काफी देर तक अँधेरे में ही सभा चलती रही।

इसके बाद 15 से 18 मार्च तक अभियान टोली ने नरेला के भोरगढ़, और शाहपुर गढ़ी के इलाकों में तथा हरियाणा के सीमावर्ती कुण्डली औद्योगिक क्षेत्र और प्याऊ मनियारी की मज़दूर बस्तियों में प्रचार अभियान चलाया तथा हज़ारों पर्चे बाँटे। इस बीच अभियान टोली ने कई दिन बादली से कुरुक्षेत्र और करनाल तक ट्रेनों में भी प्रचार अभियान चलाया और बादली, नरेला, सोनीपत आदि रेलवे स्टेशनों पर भी सभाएँ की गयीं तथा क्रान्तिकारी साहित्य का वितरण किया गया।

21 मार्च को शाहाबाद डेयरी में ही तीन झुग्गी बस्तियों के बीच के एक मैदान में बड़ी जनसभा और सांस्कृतिक कार्यक्रम किया गया। गुरशरण सिंह के नाटक 'तमाशा' पर आधारित एक नाटक तथा 'कहानी एक मेहनतकश औरत की' नाम के दो नाटकों के अलावा दो गीतों का नाटकीय मंचन किया गया – 'आलू-प्याज़ के इतने दाम, जै श्रीराम जै राम' और गोरख पाण्डेय का गीत 'पहिले पहिल जब ओट माँगे अइलें...'। तीन घण्टे से अधिक चले कार्यक्रम में वक्ताओं ने मेहनतकशों का आह्वान करते हुए कहा कि अब हमें एक नयी शुरुआत करनी ही होगी। नयी आज़ादी की लम्बी लड़ाई की शुरुआत संगठित होकर अपने छोटे-छोटे हक़ों के लिए लड़ने से करनी होगी। इसके बाद एक विशाल मशाल जुलूस निकाला गया। जुलूस में स्थानीय बस्तियों के सैकड़ों स्त्री-पुरुष मज़दूर, नौजवान और बच्चे भी शामिल हुए। 'भगतसिंह को याद करेंगे, जुल्म नहीं बर्दाश्त करेंगे', 'भगतसिंह तुम ज़िन्दा हो, हम सबके संकल्पों में', 'भगतसिंह का सपना आज भी अधूरा, मेहनतकश और नौजवान उसे करेंगे पूरा' जैसे गगनभेदी नारे लगाते हुए जुलूस की मशालों से पूरी बस्ती रौशन हो उठी और सबके दिल जोश से भर उठे।

22 और 23 मार्च को रोहिणी के विभिन्न सेक्टरों में साइकिल रैली निकाली गयी तथा जगह-जगह नुक्कड़ सभाएँ की गयीं। 23 मार्च की शाम को राजा विहार की बस्ती से मशाल जुलूस निकाला गया जो पूरे राजा विहार और बादली इण्डस्ट्रियल एरिया का चक्कर लगाता हुआ राजा विहार के मैदान में आकर समाप्त हुआ।

**– दिल्ली संवाददाता**

# मज़दूरों के नाम भगतसिंह का पैग़ाम!

इतिहास की ओर से जान-बूझकर क्यों आँखें बन्द रखी जाती हैं? आज फ़्रांस के सामन्ती जागीरदार और रूसी अभिजात कहाँ हैं? क्या इन लोगों ने इन विचारों को दबाने के लिए अपना-अपना ज़ोर नहीं लगाया और क्या क्रान्ति रुक सकी थी? फिर यहीं क्रान्ति कैसे रुक सकेगी? जब तक भूख है और श्रम करने वाले भूखे मरते रहेंगे और निठल्ले बैठने वाले हर तरह की मौज उड़ाते रहेंगे, तब तक समाजवादी विचार दबाने से और भी ज़ोर पकड़ते रहेंगे। लेकिन श्रमिकों को सँभल जाना चाहिए और समझ लेना चाहिए कि उनके आन्दोलन को दबाने के लिए कितने अत्याचार किये जा रहे हैं और यदि वे अब भी न सँभले तो बाद में पछताने से कुछ हाथ न आयेगा।

**– 'श्रमिक आन्दोलन को दबाने की चालें' शीर्षक लेख से**

●

समाज का प्रमुख अंग होते हुए भी आज मज़दूरों को उनके प्राथमिक अधिकार से वंचित रखा जा रहा है और उनकी गाढ़ी कमाई का सारा धन शोषक पूँजीपति हड़प जाते हैं। दूसरों के अन्नदाता किसान आज अपने परिवार सहित दाने-दाने के लिए मुहताज हैं। दुनियाभर के बाज़ारों को कपड़ा मुहैया करने वाला बुनकर अपने तथा अपने बच्चों के तन ढँकनेभर को भी कपड़ा नहीं पा रहा है। सुन्दर महलों का निर्माण करने वाले राजगीर, लोहार तथा बढ़ई स्वयं गन्दे बाड़ों में रहकर ही अपनी जीवन-लीला समाप्त कर जाते हैं। इसके विपरीत समाज के जोंक शोषक पूँजीपति ज़रा-ज़रा-सी

बातों के लिए लाखों का वारा-न्यारा कर देते हैं।

यह भयानक असमानता और ज़बरदस्ती लादा गया भेदभाव दुनिया को एक बहुत बड़ी उथल-पुथल की ओर लिये जा रहा है। यह स्थिति अधिक दिनों तक क़ायम नहीं रह सकती। स्पष्ट है कि आज का धनिक समाज एक भयानक ज्वालामुखी के मुख पर बैठकर रंगरेलियाँ मना रहा है और शोषकों के मासूम बच्चे तथा करोड़ों शोषित लोग एक भयानक खड्ड की कगार पर चल रहे हैं।

सभ्यता का यह प्रासाद यदि समय रहते सँभाला न गया तो शीघ्र ही चरमराकर बैठ जायेगा। देश को एक आमूल परिवर्तन की आवश्यकता है। और जो लोग इस बात को महसूस करते हैं उनका कर्त्तव्य है कि साम्यवादी सिद्धान्तों पर समाज का पुनर्निर्माण करें। ...क्रान्ति से हमारा मतलब अन्ततोगत्वा एक ऐसी समाज-व्यवस्था की स्थापना से है जो इस प्रकार के संकटों से बरी होगी और जिसमें सर्वहारा वर्ग का आधिपत्य सर्वमान्य होगा। और जिसके फलस्वरूप स्थापित होने वाला विश्व-संघ पीड़ित मानवता को पूँजीवाद के बन्धनों से और साम्राज्यवादी युद्ध की तबाही से छुटकारा दिलाने में समर्थ हो सकेगा।

...क्रान्ति मानवजाति का जन्मजात अधिकार है जिसका अपहरण नहीं किया जा सकता। स्वतन्त्रता प्रत्येक मनुष्य का जन्मसिद्ध अधिकार है। श्रमिक वर्ग ही समाज का वास्तविक पोषक है, जनता की सर्वोपरि सत्ता की स्थापना श्रमिक वर्ग का अन्तिम लक्ष्य है। इन आदर्शों के लिए और इस विश्वास के लिए हमें जो भी दण्ड दिया जायेगा, हम उसका सहर्ष स्वागत करेंगे। क्रान्ति की इस पूजा-वेदी पर हम अपना यौवन नैवेद्य के रूप में लाये हैं, क्योंकि ऐसे महान आदर्श के लिए बड़े से बड़ा त्याग भी कम है। हम सन्तुष्ट हैं और क्रान्ति के आगमन की उत्सुकतापूर्वक प्रतीक्षा कर रहे हैं।

इन्क़लाब ज़िन्दाबाद!

**– बमकाण्ड पर सेशन कोर्ट में बयान**

●

नौजवानों को क्रान्ति का यह सन्देश देश के कोने-कोने में पहुँचाना है, फ़ैक्टरी-कारख़ानों के क्षेत्रों में, गन्दी बस्तियों और गाँवों की जर्जर झोंपड़ियों में रहने वाले करोड़ों लोगों में इस क्रान्ति की अलख जगानी है जिससे आज़ादी आयेगी और तब एक मनुष्य द्वारा दूसरे मनुष्य का शोषण असम्भव हो जायेगा।

**– विद्यार्थियों के नाम पत्र**

मुद्रक, प्रकाशक और स्वामी डॉ. दूधनाथ द्वारा 69, बाबा का पुरवा, निशातगंज, लखनऊ से प्रकाशित एवं उन्हीं के द्वारा वाणी ग्राफ़िक्स, अलीगंज, लखनऊ से मुद्रित। कम्पोज़िंग : कम्प्यूटर प्रभाग, राहुल फ़ाउण्डेशन, लखनऊ।
सम्पादक : **डॉ. दूधनाथ, सुखविन्दर** • सम्पादकीय पता : **69, बाबा का पुरवा, पेपरमिल रोड, निशातगंज, लखनऊ–226006** • सम्पादकीय उपकार्यालय : जनगण होम्यो सेवासदन, मर्यादपुर, मऊ